Chap- 6

अध्याय - छः

साठोत्तरी मिथक कविता और प्रमुख हस्ताक्षर ।

अध्याय – छः

साठोत्तरी मिथक कविता और प्रमुख हस्ताक्षर :-

काव्यसृजन के संदर्भ में साठोत्तरी मिथक कविता भारतीय मनीषा को उसके सांस्कृतिक परिवेश के साथ स्थापित करता है । साठोत्तरी मिथक कविता और नयी कविता में सबसे बड़ा अन्तर तो यह है, कि नयी कविता के रचनाकारों में किसी न किसी हद तक सांस्कृतिक चेतना की अमीट छाप थी, यानी उनमें परम्परागत चेतना थी, पौराणिकता का आग्रह था और पुराण कथाओं के माध्यम से नये सन्दर्भों को उठाते थे, नयी कविता के मूर्धन्य रचनाकार "अज्ञेय" में भी परम्परा अर्थात् "ऐतिहासिक चेतना" का अभाव नहीं था, साठोत्तरी कवियों में सिर्फ वर्तमान में जीने की लालसा है, वर्तमान जिजीविषा है, वर्तमान विभिक्षिका है, वर्तमान विकृतियाँ हैं, संक्षेप में कहें तो वर्तमान ही सत्य है, वर्तमान को सुदृढ़ बनाने के लिए दीर्घ दृष्टि होनी चाहिए, नयी कविता में एक तरह से कुछ वजन था, किन्तु साठोत्तरी कविता में इसका अभाव है, "डी॰एच॰लारेंस का यह कथन कितना सटीक है, उनका कहना है, कि काव्य में सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण चीज है, जीवन प्रेरणा । ॥1॥

"स्टीफेन स्पेंडर" ने कहा है, कि आधुनिक साहित्यकार के सामने सिर्फ दो ही रास्ते हैं – एक तो वह संस्कृति विनाश की ओर अग्रसर हो जाए और दूसरे संस्कृति की नयी कला सचेतना के सन्दर्भ में पुर्नव्याख्या करे, इसके अलावा उन्होंने संस्कृति की पुनर्व्याख्या वर्तमान सन्दर्भ को लेकर ही किया, "अज्ञेय" धर्मवीर भारती, और कुँवर नारायण के नाम इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है, समकालीन रचनाकार में किसी सांस्कृतिक सचेतना के दर्शन नहीं होते, अभी वह विघटन, मूल्यहीनता और खोज की स्थिति दिन प्रति दिन आगे बढ़ती ही जा रही है ।

आज के आधुनिक रचनाकार, आज के परिवेश को समझने के लिए अतीत की पौराणिक कथाओं का इस्तेमाल करता है, नयी कविता के रचनाकारों ने कथा रूढ़ियों का इस्तेमाल सिर्फ इस लिए करते थे, कि उसे अतीत के साथ वर्तमान का

---

1. आधुनिक कविता की यात्रा – डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी – पृ० – 141

विरोधाभास दिखाकर, आधुनिक बोध को सही ढंग से परिभाषित किया, पाश्चात्य कथा - साहित्य में आधुनिकता अर्थात् साठोत्तरी कविता को परिभाषित करने का ढंग काव्य के क्षेत्र में एलियट की काव्य - कृति "वेस्ट लैन्ड" में हुआ है ।
साठोत्तरी कविता में यह प्रवृत्ति सबसे सशक्त रूप में "अज्ञेय" डॉ० देवराज, धर्मवीर भारती, जगदीश चतुर्वेदी, दुष्यन्त कुमार, कुंवर नारायण, जगदीश गुप्त, नरेश मेहता, किशोर काबरा, डॉ० विष्णु विराट जैसे कवियों ने तथा रचनाकारों ने साठोत्तरी कविता को वर्तमान समय की, तथा अतीत की पौराणिक कथाओं द्वारा समझने तथा उसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है, अज्ञेय की कविताओं में यह प्रवृत्ति फुटकर रूप में मिलती है, "देवराज" के काव्य संकलन "इतिहास पुरूष" में इसे सहज ढ़ग से खोजा गया है, इन प्रमुख कवियों ने समकालीन कविता में पौराणिकता तथा इतिहास के माध्यम से वर्तमान को खोजने का भरसक प्रयास किया है ।

अन्धा युग : धर्मवीर भारती

अन्धायुग - समकालीन कविता में मिथक पक्ष पर अगर विचार किया, जाय तो आधुनिक युग के रचनाकार का सम्बन्ध जहाँ एक ओर अपनी समग्रता में पूरे विश्व से है, तो दूसरी ओर परिवेशगत सन्दर्भ में - भारत से भी है, और अपने आप से भी है, यद्यपि द्वितीय विश्व युद्ध का प्रभाव भारत पर नहीं पड़ा था, किन्तु इस युद्ध से उत्पन्न पीड़ा, क्षतिग्रस्त मानव के अनिश्चित भविष्य के काले बादल तो भारत के आसमान पर भी छाये हुए थे । मर्यादा, दायित्व और मानव मूल्य जैसे उच्चाशयी शब्द अपनी सार्थकता खो रहे थे, साम्प्रदायिकता का दानव दिन - प्रतिदिन बढ़ रहा है, और एक तरफ प्रान्तवाद बाहें फैलाये हुए खड़ा है, तो दूसरी तरफ विघटनकारी मनोवृत्तियाँ तेज होती जा रही है, इसी के साथ टकराव की राजनीति ने तो समूचे देश में जहर घोल रही है ।

धर्मवीर भारती की काव्य - नाट्यकृति "अन्धा युग" में क्षतिग्रस्त विश्वासों - घायल आस्था, ध्वस्त मर्यादा, और गलित कुन्ठाओं का जो दुर्गन्ध युक्त दूषित और तनाव भरा माहौल है, उसका सम्बन्ध आज के मानव से है, क्यों कि अन्धा युग में प्रमुख मिथक का मूल जीवन संघर्ष, मूल्यान्धता की समस्या, और संशय की स्थिति, व्यक्ति के अकेलेपन की व्यथा, अलगाव, उपेक्षा का संत्रास

और जीवन की विडम्बनाओं से युक्त मानव संकल्प की प्रतिष्ठा की है, इस मिथकीय अवधारणा का स्पष्टीकरण करते हुए धर्मवीर भारती स्वयं कहते हैं कि मैनें उन सन्दर्भों के माध्यम से वर्तमान समय के मूल्य संकट को व्यक्त कर पाने में अधिक सफलता मैनें अनुभव किया है, और वे आगे कहते हैं, कि युद्धोपरान्त यह अन्धायुग अवतरित हुआ तब आज का युद्धो-परान्त ही व्यंजित होता है ।

आधुनिक सन्दर्भ में भारती ने जो तर्क प्रस्तुत किया है, उससे भाँलि - भाँति यह जाना जा सकता है, कि "है" और "नहीं" है की विरोधजन्य भावभूमि और द्वन्द्वमयता के आधार पर चलने वाली हमारी तर्क प्रक्रिया ज्ञान और अनुभव एक सीमा के आगे शक्तिहीन हो जाते हैं, और इसके साथ ही हम अतीत की स्थिति में पहुँच जाते हैं, ज्ञान और अनुभव के क्षेत्र में यही ज्ञानातीत और अनुभवातीत के रूप में अतीत की पुनः सर्जना नये स्रोत्र के रूप में उद्भाषित होती है ।

डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव ने "अन्धायुग" के रूप के सम्बन्ध में उनका कथन है, कि " यों किसी ने उसमें अच्छी कविता खोजने की कोशिश की है, और किसी ने अच्छा नाटक " और निराशा जब तब दोनों प्रकार के समीक्षकों को हुई है, कठिनाई यह है कि बहुत कुछ एक सम्पूर्ण काव्य - कृति के रूप में भारती ने इसकी रचना की है । [1]

" अन्धायुग की रचना में कवि प्रेरणा के किस माध्यम से सर्जनात्मक मनः स्थिति के चरम बिन्दु पर पहुँचा होगा, यह बहुत कुछ कवि के निजी मनोविज्ञान से सम्बन्धित है, फिर भी रचना के अध्ययन और कवि के तत्सम्बन्धी निर्देश से ऐसा प्रतीत होता है, कि सब से पहले कवि राष्ट्रीय स्तर पर व्याप्त संशय, ग्लानि, मर्यादाहीनता, बर्बरता, और सामाजिक मूल्यों के विघटन की समस्या की ओर आकृष्ट हुआ है । इस बोध की पुष्टि कवि को विष्णु पुराण में दिये गये, कलि-युग के वर्णन में मिली है । " [2]

" प्रस्तुत नाट्य काव्य के आरम्भ में इसका उल्लेख किया है । " [3]

---

1. नयी कविता का परिप्रेक्ष्य - डॉ0 परमानन्द श्रीवास्तव - पृ0 - 76
2. दे. ,विष्णु पुराण चतुर्थ अंश - अध्याय - 24 श्लोक - 73-92 ।
3. अन्धा युग - धर्मवीर भारती - पृ0 - 9 - 10

" धर्मवीर भारती के निम्न पंक्तियों का स्रोत्र भी विष्णु पुराण सा प्रतीत होता है।"

" यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदहनि ।
प्रतिपन्नं कलियुगं .... । " §1§

" जिस क्षण प्रभु ने प्रस्थान किया
द्वापर युग बीत गया उस क्षण
प्रभुहीन धरा पर आस्थाहत
कलियुग ने रक्खा प्रथम चरण ।। " §2§

" भारती ने स्वयं स्वीकार किया है, कि जिस नये राग-बोध को लेकर हिन्दी की नयी कविता अग्रसर हो रही है, व्यास उसके सबसे निकट पड़ते हैं, उन्होंने प्रथम बार मनुष्य को उसके समग्र परिवेश में आँका था, और विस्तृत किन्तु जटिल युग - पीठिका में मनुष्य के राग-द्वेष का एक विराट् मानचित्र समुपस्थित किया था । " §3§

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में राजनेताओं में फैली हुई अवसरवादिता शोषण की प्रवृत्ति तथा उनके हथकन्डों में छटपटाते हुए जन समाज की स्थिति का उद्घाटन करते हुए कवि ने हाल की स्थिति पर प्रहार किया है, कवि का कहना है, कि स्वार्थी व्यक्ति ही मूल्यों के लिए विनाशकारी सिद्ध होता है, मानवजाति के शक्ति का शोषण करने वालों के प्रति धर्मवीर भारती ने लिखा है कि :-

" सत्ता होगी उनकी /जिनकी पूँजी होगी/ जिनके नकली चेहरे होंगे/
केवल उन्हे महत्त्व मिलेगा / राज शक्तियाँ लोलुप होंगी / जनता -
उनसे पीड़ित होकर / गहनों गुफाओं में छिप-छिपकर दिन काटेगी/
गहन गुफाएँ वे सचमुच की या अपने कुंठित मन की । "§4§

यह एक ऐसी शक्तियाँ है, जो जनमत को भी कुंठित कर देती हैं, व्यक्ति अपने आपको अकेला महसूस करने लगता है, और शासक पक्ष इसका भरपूर फायदा उठता है, जिससे व्यक्ति का नैतिक पतन हो जाता है, जो शक्तियाँ लालची है,

---

1. विष्णु पुराण - चतुर्थ अंश - अध्याय - 24 श्लोक - 113
2. अन्धा युग - धर्मवीर भारती - पृ0 - 122
3. नयी कविता अंक दो - 1955 - धर्मवीर भारती विशेष सम्पादक-डॉ0जगदीश गुप्त तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी - पृ0 - 49
4. अन्धा युग - धर्मवीर भारती - पृ0 - 12

वह अपनी शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण अधिकार जमाने के लिए दूसरों के क्षेत्र में दखअंदाजी करेगी, जिसकी वजह से युद्ध होगा, और मूल्यों का नाश होगा, और युद्ध के बाद समाज में जो विकार उत्पन्न होगें, उनसे निपटना मुश्किल होगा । अंधायुग काव्य में इस उद्देश्य को धर्मवीर भारती उद्घाटित करते हुए कहते हैं कि :-

" युद्धोपरांत, यह अन्धायुग अवतरित हुआ / जिसमें स्थितियाँ,-
मनोवृत्तियाँ, आत्माएँ सब विकृत हैं / है बहुत पतली डोरी -
मर्यादा की / पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षो में / सिर्फ कृष्ण
में साहस है सुलझाने का / वह है भविष्य का रक्षक, वह है -
अनासक्त / पर शेष अधिकतर है अँधे / पथ भ्रष्ट, आत्महारा, विगलित/
अपने अंतर की अंध गुफाओं के वासी । §1§

प्रस्तुत पद्यांश में कवि ने यह उद्घाटित कर दिया है, कि जब व्यक्ति की आत्मा विकृत हो, व्यक्ति मनोवृत्तियों से परिचालित हो, तो वह अपने विवेक को त्यागकर युद्ध अपनायेगा, तो युद्ध से मानव का विनाश निश्चित है, अगर युद्ध होगा, तो किसी न किसी को मर्यादाओं को तोड़ना ही पड़ेगा ।

पौराणिक आख्यानक काव्यों का प्रयोग साठोत्तरी हिन्दी कविता की अपनी एक विशेषता रही है, इसके पहले भी हिन्दी कविता में पौराणिक आख्यानों पात्रों आदि का विस्तृत वर्णन हुआ है, किन्तु साठोत्तरी हिन्दी कविता में मिथकों और प्रतीकों के पीछे जो मनोदृष्टि है, उसमें कुछ नयापन, तथायर्थाथ है।

धर्मवीर भारती के "अन्धायुग" में महाभारत का जो प्रसंग उत्तरार्द्ध की घटनाओं को उद्घाटित करते हुए, युद्धोपरान्त, अपंग अमानुषिक एवं आत्मघाती अन्ध - संस्कृति का चित्रण हुआ है, इस संस्कृति में मानव जाति का भविष्य दायित्व युक्त, मर्यादित मुक्त आचरण पर टिकी है । इसके पहले जो विनाश हुआ है, उसके निर्माण का दायित्व हम सब के ऊपर है, मानव जाति थी इस विकट समस्या से उगारने के लिए सारे परिवेश को सही ढ़ग से समझना है, तभी मानव जाति का उत्थान हो सकता है, और यही इस कृति की फलश्रुति है ।एक उदूरण दृष्टव्य है :-

" नियति नहीं है, पूर्व निर्धारित
उसको हर क्षण मानव - निर्णय बनाता - मिटाता है । §2§

---

1. अन्धायुग - धर्मवीर भारती - पृ0 - 12
2. - वही - पृ0 - 26

कवि भारती ने "बलराम" के माध्यम से "कृष्ण" और "भीम" की जो भर्त्सना की है, उससे पान्डवों के प्रति कृष्ण के व्यक्तिवादी राग का पता चल जाता है, एक उद्दरण दृष्टव्य है :-

पान्डव सम्बन्धी हैं ?/ तो क्या कौरव शत्रु थे ? /
मैं तो आज बता देता भीम को / पर तुमने रोक दिया /
जानता हूँ मैं तुझको शैशव से / रहे हो सदा ही मर्यादाहीन कूट बुद्धि।﴾1﴿

" अन्धा युग" के अनुसार युद्ध में कृष्ण युधिष्ठिर जैसे धर्मात्मा भी पक्षपात करते हैं । और झूठ का सहारा लेते हैं । और इसी झूठ के कारण "अश्वत्थामा मारा गया कहलवा कर द्रोण और अश्वत्थामा को चिन्ता में डाल देते हैं, अश्वत्थामा को तो मानव के स्तर से उतार कर पशु बना दिया जाता है । युधिष्ठिर की यह असत्यवाणी इतना भयंकर परिणाम देती है, कि एक ज्ञानी अश्वत्थामा जैसा व्यक्ति मानव के स्तर से गिर कर पशु के समान व्यवहार करने लगता है । वह पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए युद्ध के उन सारे नियमों का उल्लंघन करता है, और अपने पिता के प्रति किये गये अन्याय को भुला नहीं पाता । एक उदाहरण देखें :-

" पाकर निहत्था उन्हे / पापी धृष्टद्युम्न ने / अस्त्रों से खन्ड-खन्ड कर-
डाला / भूल नहीं पाता हूँ / मेरे पिता थे अपराजेय / अर्धसत्य से ही /
युधिष्ठिर ने उनका बध कर डाला । ﴾2﴿

अश्वत्थामा अपनी मनोग्रन्थियों से इतना कुन्ठित हो जाता है, कि वह उत्तेजित होकर याचक का वध कर देता है, बर्बर पशु की तरह वह तटस्थ को भी दाँतो से फाड़ देने को तैयार हो जाता है । उत्तेजित अवस्था में याचक का वध कर के वह समझता है कि उसकी मांस पेशियों का तनाव ढीला पड़ जाता है, सबसे ज्यादा क्रोध अश्वत्थामा को यह था कि उसके स्वामी दुर्योधन की पराजय तथा निजी अपमान के कारण प्रतिशोध की अग्नि से   सुलझ रहा है, एक उद्दरण दृष्टव्य है :-

" मातुल मैं योद्धा नहीं हूँ / बर्बर पशु हूँ / यह तटस्थ शब्द / है मेरे -
लिए अर्थहीन / सुन लो यह घोषणा / इस अंधे बर्बर पशु की / ....
बध मेरे लिए नहीं रही नीति । वह है अब मेरे लिए मनोग्रन्थि ।" ﴾3﴿

---

1. अन्धा युग - धर्मवीर भारती - पृ0 - 63
2. - वही - पृ0 - 36
3. - वही - पृ0 - 40

जिस समय वह दुर्योधन का वध भी अन्याय पूर्ण ढ़ग से हुआ है, उसी समय से वह पान्डवों की मर्यादावादिता की भर्त्सना करने लगता है, और प्रति-हिंसा तथा प्रतिशोध की अग्नि से धधक रहा है, "बलराम" के शब्दों से वह पान्डवों को भी अधर्म से मारने के लिए प्रेरित हो उठता है ।

" मातुल मैंने बिल्कुल सोच लिया / उनको मैं मारूँगा / मैं अश्वत्थामा / उन नीचों को मारूँगा । (1)

"कृत वर्मा" के व्यंग्य से बिंधा हुआ वह मान - अपमान की सारी मर्यादा को भूल जाता है, और स्पष्ट रूप से कहता है, कि प्रस्तुत युद्ध में जब सभी हत्याएँ अधर्म से ही हुई हैं तो अश्वत्थामा से ही मर्यादा बुद्धि की अपेक्षा क्यों की जा रही है, एक उदाहरण देखें :-

" सुनते हो पिता / मैं इस प्रतिहिंसा में / बिलकुल अकेला हूँ /
तुमको मारा धृष्टधुम्न ने अधर्म से / भीम ने दुर्योधन को -
मारा अधर्म से / दुनियाँ की सारी मर्यादा बुद्धि / केवल इस -
निपट अनाथ अश्वत्थामा पर ही / लादी जाती है । (2)

अश्वत्थामा स्पष्ट रूप से कहता है, कि पान्डवों ने इस युद्ध में मानव जाति के मूल्यों का घोर अपमान किया है, उन्होंने सभी तरह से मर्यादाओं का उल्लंघन किया है, एक उदाहरण देखें :-

पान्डवों की मर्यादा / मैंने आज देखी द्वन्द्व युद्ध में / कैसे अधर्म युक्त-
वार से / दुर्योधन को नीचे गिरा दिया भीम ने / टूटी जाँघों, टूटी-
कोहनी, टूटी गर्दन वाले / दुर्योधन के माथे पर रखकर पाँव / पूरा
बोझ डाले हुए भीम ने / बाँहें फैलाकर पशुवत घोर नाद किया । (3)

इसके अतिरिक्त अन्य पात्रों में अन्धा युग के ये दोनों प्रहरी अपने जीवन को निरुद्देश्य व्यतीत होता हुआ देख कर निरर्थकता की तीव्र अनुभूति से ग्रस्त हो जाते हैं, उन्हें जो कर्तव्य सौंपा गया है, उसका भी कोई महत्त्व नहीं रह गया । अपने कर्तव्य को निभाते हुए वे इतने यांत्रिक हो गये हैं कि उन्हें अगले जन्म में भी इस निरर्थकता से छूटने की आशा नहीं रही, वे आपस में विचार विमर्श करते हैं ।

---

1. अन्धा युग - धर्मवीर भारती - पृ० - 64
2. - वही - पृ० - 65
3. - वही - पृ० - 66

देखने पर तो ये दोनों प्रहरी अपना कर्तव्य निभा रहे हैं, पहरा देते हुए जीवन को सार्थक कर रहे हैं । परन्तु उनका यह कर्म भी निरर्थक ही हैं, वे समझते हैं, कि उनके इस पहरे का भी कोई महत्त्व नहीं, उनकी कार्यशक्ति व्यर्थ ही नष्ट हो रही है ।एक उदाहरण देखें :-

" भाले हमारे ये, / ढालें हमारी ये, / निरर्थक पड़ी रही /
अंगों पर बोझ बनी / रक्षक थे हम केवल / लेकिन रक्षणीय कुछ
भी नहीं था यहाँ । (1)

उन प्रहरीओं को ऐसा लगता है, कि ये अँधे बूढ़ों की संस्कृति की रक्षा करते हुए वे थक से गये हैं, उनकी यह थकावट व्यर्थ की मेहनत से उत्पन्न हुई है, क्यों कि युद्ध के बाद राजा धृतराष्ट्र के राज्य में मूल्यों का इतना अधिक पतन हुआ है, कि कुछ भी सही दिखाई नहीं पड़ता, एक उदाहरण देखें :-

" मेहनत हमारी निरर्थक थी / आस्था का / साहस का / श्रम का,
अस्तित्त्व का हमारे / कुछ भी अर्थ नहीं था । (2)

अपने जीवन की इस व्यर्थता पर वे आत्मघाती पीड़ा का अनुभव करते हैं और धृतराष्ट्र की संस्कृति पर कटाक्ष करते हैं, युद्ध के बाद उत्पन्न स्थिति से असहाय पीड़ा ने उनके जीवन को बहुत उदासीन बना दिया है, अन्धायुग के जितने भी मुख्य पात्र हैं, धृतराष्ट्र, गांधारी, संजय, विदुर आदि भी इस बात का अनुभव कर रहे हैं, कवि कहता है कि अनुभवहीन व्यक्ति की ज्ञानहीन आस्थाएँ और निश्चित मूल्य भी निरर्थक लगते हैं, इसी लिए तो धृतराष्ट्र युद्धों की वीभत्सता को देखे बिना युद्धों को निरर्थक घोषित नहीं कर पाता, और जब युद्धों की वास्तविकता को पहचान लेता है, तो वह आग बुलबुला हो उठता है, एक उदाहरण दृष्टव्य है :-

देख नहीं सकता हूँ / पर मैंने छू - छूकर / अंग - भंग सैनिकों को /
देखने की कोशिश की / बांह के पास से / हाथ जब कट जाता है/
लगता है वैसा जैसे मेरे सिंहासन का / हत्था है । (3)

इसी तरह धर्मवीर भारती ने अपने "काव्य" अन्धा युग में नपुंसक अस्तित्त्व, धुरोहीनता, संशय, अनास्था, आन्तरिक खोखलापन और विषाद के स्वर को उठाया है, विभिन्न पात्रों की मनः स्थितियाँ तथा उनकी मान्यतायें और उनके

---

1. अन्धा युग - धर्मवीर भारती - पृ0 - 14
2. - वही - पृ0 - 15
3. - वही - पृ0 - 50

आचरण में ये स्वर सुनाई पड़ते हैं । एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" आज इस पराजय की सेवा में / पता नहीं / जानें क्या झूठा पड़
गया कहाँ / सबके सब कैसे / उतर आए हैं अपनी धुरी से आज /
एक - एक कर सारे पहिए / हैं उतर गए जिससे / वह बिल्कुल -
निकम्मी धुरी / तुम हो / क्या तुम हो प्रभु । §1§

अन्धा युग में महा भारत की घटनाओं और आधुनिक सभ्यता में समानता स्थापित की गई हैं, पुरातन के आधार पर युद्ध - सभ्यता के उस भयानक परिणामों पर कितनी सटीक और मार्मिक टिप्पणी निम्न लिखित पंक्तियों में व्यक्त की गई है, एक उदाहरण देखें :-

विदुर : झुलस झुलस कर
गिर रही हैं वनस्पत्तियाँ । §2§

व्यास : सुरज बुझ जायेगा ।
धरा वंजर हो जायेगी । § 3 §

कृपाचार्य : रक्त ने युयुत्स के
लिख जो दिया है इन हमलो को भूमि पर
समझ नहीं रहे हैं उसे ये आज ।
यह आत्म हत्या होगी प्रति ध्वनित
इस पूरी संस्कृति में
दर्शन में, धर्म में,,कलाओं में
शासन व्यवस्था में
आत्मघात होगा बस अन्तिम लक्ष्य मानव का । §4§

अन्धायुग काव्य की कथा वस्तु में दो बातें है, एक बात यह है कि इसका सम्बन्ध पौराणिक आख्यान के सहारे विकसित आधुनिक संवेदना से है, और दूसरे का सम्बन्ध जीवन की आन्तरिक स्थितियों से है, इसमें कोई संदेह नहीं कि यह कृति आधुनिक भावबोध को स्थापित करती है, रचनाकार ने आधुनिक जीवन मूल्यों के विघटन संक्रमण क्षोभ और अनेकानेक संत्रस्त्र विसंगतियों को अलग-अलग समस्याओं के साथ जोड़ा है । मूल्यों की विसंगति का अनुमान और आधुनिक संवेदना का अभिव्यंजन इन पंक्तियों में स्पष्टतः देखा जा सकता है :-

---

1. अन्धायुग - धर्मवीर भारती - पृ0 - 61
2. - वहीं - पृ0 - 93
3. - वहीं - पृ0 - 96
4. - वहीं - पृ0 - 112

यह युग एक अंधा समुद्र है
चारों ओर से पहाड़ो से घिरा हुआ
और दर्रों से
और गुफाओं से
उमड़ते हुए भयानक तूफान चारों ओर से
उसे मथ रहे हैं । §1§

xx xx xxx xx

मैनें अपनी प्रेत शक्ति से / सारे प्रवाह को /
कथा की गति को बाँध दिया है / और सब पात्र अपने स्थान
पर स्थिर / हो गये हैं / क्यों कि मैं चीर - फाड़ कर -
हरेक की आन्तरिक असंगति / समझना चाहता हूँ । §2§

इस काव्य में कई बातें ऐसी भी है, जो आधुनिक जीवन सन्दर्भ में पढ़ी और देखी जा सकती है, वर्तमान जीवन में जो अनास्थाऔर विवशता पनपी है, वह युद्ध की संभावनाओं से और गहरी होती जा रही है, अन्धा युग में आने वाले तीसरे विश्व - युद्ध की संभावना से भी सर्तक रहने का संकेत है । युद्ध अभिशाप है फिर आज की परिस्थितियों में जब कि परमाणु हाइड्रोजन और न्यूक्लियर अस्त्र - शस्त्र के अन्वेषण ने जीवन को त्रस्त्र कर रखा है, लगता है, कि "चतुर्थ अंक" में अश्वत्थामा का ब्रहास्त्र फेंकना इसी अन्वेषण का पर्याय है, "व्यास" के ये शब्द " ब्रम्हास्त्र" के सहारे "अणु सभ्यता" का ही परिचय देते हैं, और यह प्रयोग सफल हुआ तो, इसका परिणाम कितना भयंकर होगा, जिसकी कल्पना करना मुश्किल होगा । एक उदाहरण देखें :-

" आगे आने वाली सदियों तक
पृथ्वी पर रसमय वनस्पतियाँ नहीं होगी
शिशु होंगे पैदा विकलांग और कुन्ठग्रस्त
सारी मनुष्य जाति बौनी हो जायेगी । " §3§

संजय और विदुर कौरव पक्ष के होकर भी कृष्ण के अनुगामी है, वे स्थान - स्थान पर धृतराष्ट्र और गंधारी को बार-बार कृष्ण के अतिमानवीय रूप की ओर संकेत करते हैं, किन्तु अपने अन्धेपन में कोई भी उनकी सुनता नहीं है, वे

1. अन्धा युग - धर्मवीर भारती - पृ0 - 64
2. - वही - पृ0 - 65-66
3. -वही - चतुर्थ अंक

बराबर इस बात का अनुभव करता है और दूसरा चिन्तन करता है - अपने तक सीमित करके, इन्ही पात्रों के सत्य को, परिष्कार को व ज्योति को पाया जा सकता है, धृतराष्ट्र ने अन्त में थोड़ी ज्योति पाई भी है, किन्तु गंधारी जैसे पाकर भी खो बैठी है और अश्वत्थामा भी अनुभव करता हुआ शायद यही कहता है :-

" मेरा था पाप

xx xx xx

किन्तु हाथ मेरे नहीं थे,
हृदय मेरा नहीं था
अंधा युग पैठ गया था नस - नस में

xx xx xx xx

वह था मेरा शत्रु
पर उसने मेरी पीड़ा भी धारण
कर ली
जख्म हैं वदन पर मेरे
लेकिन पीड़ा सब शान्त हो गई बिल्कुल । §1§

इस काव्य में कृष्ण का चरित्र स्पष्ट रूप से सामने नहीं आता है, किन्तु वे रहस्मय अवश्य हैं, वस्तुतः वे सर्वत्र व्याप्त है, सत्य में असत्य में तभी तो वे सुख-दुख को तथा सारे महा भारत युद्ध के पाप पुण्यों को अपने ऊपर ले लेते हैं, सब की वेदना का भार उठाने वाले कृष्ण कहते हैं कि :-

" अट्ठारह दिनों इस भीषण संग्राम में
कोई नहीं केवल मैं मरा हूँ करोड़ों बार ...
आश्वत्थामा के अंगों से
रक्त, स्वेद, पीव बनकर बहूँगा ....
मैं ही युग युगांतर तक
जीवन हूँ मैं
तो मृत्यु भी तो मैं ही हूँ माँ
शाप यह तुम्हारा स्वीकार है । §2§

कुछ लोगों की आपत्ति है कि अन्धा युग निराशा और कुन्ठा का आख्यान है, उसमें अंधकार ही अंधकार है, प्रकाश की एक भी किरण नहीं, वास्तव

---

1. नयी कविता - नये धरातल - डॉ० हरिचरण शर्मा - पृ० - 233
प्रकाशक - पद्म प्रकाशन, पदम बुक कम्पनी, जयपुर

2. - वही - पृ० - 233

में यह कथन इतना सटीक नहीं है, जिस युग में अंधापन हो उसे प्रकाश की किरण देने के लिए विवेक मानवीय मर्यादा व सत्य ही काम में आ सकते हैं । इस प्रकार अंधायुग में संजय व विदुर तथा इन सबके ऊपर विवेक ही प्रकाश दे रहा है, भारती अंधायुग की समस्त कटुता को पीने के बाद भी सत्य की प्रकाश किरण पाने के लिए छटपटा रहे हैं, अंधा युग की निम्नपंक्तियाँ देखिए :-

" जिनके लिए युद्ध किया
उनको यह पाना कि वे सब कुटुम्बी अज्ञानी हैं
जड़ हैं दुर्विनीत या जर्जर हैं । {1}

और कृष्ण का कथन देखिए :-

" सबका दायित्व लिया मैंनें अपने ऊपर
अपना दायित्व मैं सौंप जाता हूँ सबको । " {2}

कनुप्रिया का मिथक :

धर्मवीर भारती की कनुप्रिया के प्रेम की पृष्ठभूमि में विच्छिन्नता की हताशा काम कर रही थी, जो मध्यम वर्ग के जीवन की एक खास त्रासदी थी, क्योंकि बिल्कुल उच्च वर्ग अथवा सबसे पिछड़े वर्ग में प्रेम की हताशा उतनी अधिक नहीं होती, मध्य कालीन भक्त कवियों की राधा ऊधो के बार-बार समझाने के बावजूद आध्यात्मिक भावना में नहीं घिरती, वह आज के गांव की औरतों जैसी लगती है, और वास्तविकता की जमीन पर खड़ी मिलती है, एक अलौकिक काव्य परिवेश में भी वह लौकिक और वस्तुवादी दृष्टिकोण से कृष्ण को देखती है, वह उनके साथ खेलना कूदना, गाय चराना, और लीला करना चाहती है, वह जीवन के अर्थ को नहीं समझती, वह कृष्ण के साथ सिर्फ भोगना चाहती है, और अनायास ही वह जीवन को भोग कर उसकी इतनी सार्थक पहचान कर लेती है, कि ऊधो इस कनुप्रिया के पास आते तो सहज ही अपने वश में कर लेते, धर्मवीर भारती की कनुप्रिया एक बौद्धिक काव्य परिवेश में भी अपना ठोस स्वरूप त्याग कर अलौकिक और दिव्य हो जाती है, गहन आत्मवाद की ओर जाने के लिए वह अपनी "मुझे" को जिस्म से अलग कर लेती है, एक उद्धरण द्रष्टव्य है :-

---

1. नयी कविता - नये धरातल - डॉ० हरिचरण शर्मा - पृ० - 234
2. - वही - पृ० - 234

तुम्हारे शिथिल आलिंगन में मैनें कितनी बार इन सबको रीतता हुआ-
पाया है / मुझे ऐसा लगा है / जैसा किसी ने सहसा जिस्म के -
बोझ से / मुझे मुक्त कर दिया है / और इस समय मैं शरीर नहीं हूँ /
मैं मात्र एक सुगन्ध हूँ / आधी रात महकनें वाले इन रजनीगंधा के -
फूलों की प्रगाढ़, मधुर गंध / आकारहीन, वर्णहीन, रूपहीन । ﴾1﴿

फूलों के बिना क्या सिर्फ सुगंध का अस्तित्व हो सकता है, कनुप्रिया अपने बयान इस प्रकार देती है, कनुप्रिया अपना प्रकृत प्रेम खोकर, व्यक्ति के निरंकुश आत्मस्वातंत्र्य की राजनीति का हिस्सा बन जाता है, प्रेम एक बिल्कुल निरपेक्ष चीज कैसे है, इस वर्ग भेद का कैसे असर नहीं पड़ता, यौन और सामाजिक संघर्षों से इसका कोई संबंध कैसे नहीं है, जब कि वर्ग - संघर्ष के विकास का स्पष्ट असर स्त्री - पुरूष के प्रेम की समग्र अंतबाई संरचना पर पड़ता है ।

इस काव्य में राधा भी ऐसी परम्परा का निर्वाह करती हुई सामाजिक पगडंडियों के पार पहुँचना चाहती है - एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" क्या तुमने उस बेला मुझे बुलाया था कनु ?
लो मैं सब छोड़ छाड़ कर आ गई । ﴾2﴿

इस काव्य में ऐसे समय पर कवि ने राधा के इस कदम को प्रगतिशील बताया है, बल्कि राधा के सब छोड़ने - छाड़ने की बात प्रेम को स्वीकृति देने की उसकी वस्तुगत अभिलाषा काफी निष्कलंक है ।

कनुप्रिया की राधा कृष्ण को कई रूपों में देखती है, शिशु लीला पुरूषोत्तम, सामंत, योगी, किन्तु उसे सबसे प्रिय रूप कृष्ण का लगता है, शिशुरूप, इस रूप को देखकर वह सृजन और चरम तृप्ति से भर जाती है, अन्त में युद्ध से खिन्न होकर कृष्ण जिस कनुप्रिया के पास लौटते हैं, वह वंशीधुन पर मोहित होने वाली अथवा उनके कंधों, बाहों, होठों पर दंतपंक्तियों के नीले चिन्ह अंकित करने वाली राधा नहीं है, बल्कि मातृवत प्रेयसी है, कृष्ण उसका छौना है, धर्मवीर भारती ने राधा को कृष्ण की इच्छाओं की सृष्टि माना है, एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" सारे सृजन, विनाश, प्रवाह
और अविराम जीवन - प्रक्रिया का
अर्थ तुम्हारी इच्छा है....... इस इच्छा का
इस संकल्प का अर्थ कौन है ?

---

1. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ0 शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ0 - 309
2. -वही - पृ0 - 309

वह मैं हूँ प्रियतम .... ।
ओ मेरे सृष्टा,
तुम्हारे संपूर्ण अस्तित्व का अर्थ है
मात्र तुम्हारी सृष्टि । §1§

कनुप्रिया स्वयं रचित और स्वयं प्रमाण है, दूसरी तरफ कृष्ण की इच्छाओं की सृष्टि भी है, वह एक प्रेयसी भी है, और उसे बार - बार अपने माथे की मांग का ख्याल आते ही सामाजिक भय से कांप उठती है, वह इस समस्या का निराकरण खोजती है, जिस्म के स्थान पर एक पुकार बनकर, कनुप्रिया सिर्फ अपने अतीत के कृष्ण को पुकार कर स्थिर हो जाती है ।

कनुप्रिया में कवि ने राधा को नये चेहरे - मोहरे एवं [illegible] अनुभूतियों के नये स्वरूप के साथ पहले से अलग परिवेश में खड़ा किया है । कवि ने राधा को नया सौंदर्यात्मक व्यक्तित्व दिया है, कहीं - कहीं कवि ने काफी उलझन तथा चिंतन भी भर दिया है, इस कृति का मुख्य हिस्सा काफी सुन्दर है, जिसमें राधा का प्रेम - स्फुरण उसके यौवन को आंदोलित करता है, राधा अपने आपको कृष्ण के प्रेम में पूरा समर्पित कर देने की आकुलता उसे ग्रामीण समाज की परम्पराओं के विरुद्ध खड़ा करने लगती है, उसका प्रेम खेतिहर संस्कारों के साथ विकसित हुआ था, इस लिए वह एक भावात्मक मौन के रूप में काफी अधिक उभरा, किसी अभिजात प्रणय निवेदन का भावावेग उसमें नहीं मिलता ।

राधा की गहरी होती हर भावना भी समाज की रूढ़िग्रस्त परम्परा की जर्जरावस्था को भी उधाड़ती है, उसके आत्मचिंतन का विषय सिर्फ भावनात्मक समपर्ण का नहीं शरीर के समपर्ण का भी है, वह अगर वंशी के सत्त सुरों की भांवर से बँधकर प्रेम की पवित्र मादकता में डूबती है, तो उसकी भौतिक परिणति के स्तर पर जिस सामाजिक बाधा का सामना करना पड़ता है, उसका भी अनुभव करती है, एक उदाहरण देखें :-

" मैं पंखकटी विहगी, आंधी की कदली
अधजली पतंगी, मस्तट उछली मछली
जीने दे रहा समाज ने वृन्दावन का
मरने न दे रहा महा मोह मोहन का । §2§

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती
2. - वही -

धर्मवीर भारती ने ग्रामीण संवेदना को साथ लेकर आधुनिक जीवन की विडम्बना को उभारने का प्रयास किया है, कवि ने इस कृति में सात सोपानों में राधा के भावात्मक चिंतन का विकास दिखाया, जो रीतिकालीन कवियों की विरह दशाओं के चित्रण से सर्वथा भिन्न है, कवि ने प्रेम भावना और शरीर के द्वन्द्वात्मक रूप को स्पष्ट करते हुए प्रेम की गहनता के साथ शरीर के समर्पण का औचित्य स्थापित किया, प्रेम को कभी भाववादी स्तर पर स्वीकार नहीं किया, और शारीरिक प्रेम को भी उसने मन की भावना से तोड़ कर नहीं देखा :- एक उदाहरण देखें :-

" तन को देखो, मन अष्टावक्र बनेगा ।
मन हुआ सुदर्शन तो, तन चक्र बनेगा । (1)

कवि जीवन के वस्तुवादी पक्ष को गतिशील करना चाहता है, परन्तु हृदय की भावसंपदा की अवहेलना करके नहीं, राधा में, चंचलता एवं समपर्ण की तीव्र इच्छा है, प्रारम्भ में वह सामाजिक वातावरण के आगे गीली मिट्टी की तरह व्यक्तित्वहीन बनी रहती है, और वस्तुतः एक कुंठित जीवन जीती है । कवि ने साधारण युवतियों के घुटन एवं कुन्ठा को इसी बहाने उजागर कर दिया है, उनकी जिंदगी भी आज कितनी संकीर्ण है । राधा का परिवार उसे धिक्कारता है, उसके हाथों में कंगन की जगह हथकड़ियाँ पहना देता है, वह गंवई युवती की दासतापूर्ण-जिन्दगी का चरम रूप भोगती और व्यथित होती है, यह व्यथा ही उसकी चेतना है, जो एक साथ उसे रास की पुरानी मधुर स्मृत्ति एवं भावी विद्रोह के स्तरों में एक साथ जोड़ देती है, उसे बांसुरी की आवाज शक्ति देती है, और वह निर्भय होकर विराट एवं असीम व्यक्तित्त्व वाले पुरूष कृष्ण की ओर दौड़ पड़ती है, उसका जी थका और उदास होता है, पर दृष्टि में उष्मा होती है - "उष्मा नयनों में नत नयनों में पानी, हिम के द्रव की दुहराई गई कहानी " । उसका प्रणय यर्थाथ भूमि पर आ जाता है, कृष्ण के कर्म में राधा सृजनात्मक हिस्सा लेती है, कवि नेप्रेम को सृजनात्मक धरातल पर देखा है, इसलिए राधा का भावेग कुछ नये सामाजिक मूल्यों के प्रति आग्रह बनकर सामने आता है । (2)

---

1. कनुप्रिया - धर्मवीर भारती
2. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ० - 316

धर्मवीर भारती यह मानते हैं कि घोर व्यक्तिवादिता के कारण आज के मनुष्य के पास पाप - पुण्य, न्याय - अन्याय को पहचानने की कोई कसौटी ही नहीं रह गई, इसी लिए आज के सुविधा भोगी व्यक्ति के सामने मूल्यों का कोई औचित्य ही नहीं रह गया, वह विवेक पूर्ण निर्णय लेने की जगह निर्णय को जुए की तरह खेलने का प्रयास कर रहा है, अपनी वैभवशाली सुविधा को बढ़ाने के लिए मूल्यों को तोड़ - मरोड़कर प्रस्तुत कर रहा है । "कनुप्रिया" में राधा ऐसे विवेक हीन मूल्यों पर व्यंग्य करती है, एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" नींद में तुम्हारे होंठ धीरे - धीरे हिलते हैं ।
न्याय - अन्याय, सदासद् विवेक - अविवेक ।
कसौटी क्या है ? आखिर कसौटी क्या है । (1)

कनुप्रिया का कृष्ण भी विवेक - सम्मत निर्णय न लेकर संशयग्रस्त ही है, वह समझ रहा है, कि उसके निर्णय सुविधा भोगी व्यक्ति के ही निर्णय हैं, तभी तो वह अपनी विवशता पर व्यंग्य करता हुआ कह उठता है । एक उदाहरण देखें :-

" यदि कहीं उस दिन मेरे पैताने ।
दुर्योधन होता ने आह ।
इस विराट समुद्र के किनारे,
ओ अर्जुन मैं भी, अबोध बालक हूँ । (2)

डॉ० धर्मवीर भारती का विचार है कि जब तक मूल्य आचरण में नहीं उतरते उनका कोई महत्त्व नहीं, वे शब्द मात्र हैं, तभी तो "कनुप्रिया" की राधा मानती है, कि तन्मयता की स्थिति में कहे गए उन शब्दों का कोई अर्थ नहीं, जीवन में ढाले वगैर मूल्यों की कोई आवश्यकता नहीं है, राधा कृष्ण से कहती है, कि :-

" शब्द, शब्द, शब्द .../ कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व ... /
मैंने भी गली - गली सुनें हैं ये शब्द ।
अर्जुन ने इसमें चाहे कुछ भी पाया हो ।
मैं इन्हे सुनकर भी कुछ नहीं पाती प्रिय । (3)

---

1. कनुप्रिया - डॉ० धर्मवीर भारती - पृ० - 70
2. - वही - पृ० - 77
3. - वही - पृ० - 72

"कनुप्रिया" की राधा मूल्यों को राग परक ही मानती हैं इसीलिए वह कर्म, स्वधर्म, निर्णय और दायित्व आदि शब्द उसे कोई महत्त्व नहीं देते उसे ऐसा लगता है, जैसे वह अर्जुन की तरह मोहग्रस्त हो गई है, और कृष्ण उसे छल रहे हैं, वह यह भी नहीं जानती कि युद्ध कौन सा है और किसके पक्ष में है, और क्यों हो रहा है, वह कृष्ण को एक टक देख रही है, सेनायें चुपचाप देख रही हैं, और इतिहास भी रुक गया है, कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व आदि सब व्यर्थ प्रतीत होते हैं, उसे तो कृष्ण का रूप ही लुभा रहा है, वह कृष्ण के शब्दों के प्रति मुग्ध है, और उसे तो ऐसा प्रतीत होने लगा है, कि कृष्ण के सारे शब्दों में सिर्फ राधा - राधा की ही पुकार सुनाई पड़ती है । एक उदाहरण देखें :-

" कर्म, स्वधर्म, निर्णय, दायित्व ..../
मुझ तक आते - आते सब बदल गए हैं ।
मुझे सुन पड़ता है, केवल राधन् - राधन् ।
शब्द - शब्द, शब्द, तुम्हारे शब्द अगणित हैं ।
कनु, संख्यातीत, पर उनका अर्थ मात्र एक है ।
मैं । मैं केवल मैं । §1§

" कनुप्रिया " की राधा किसी भी आधुनिक नारी का प्रतीक है, जिसका पति आधुनिक अर्थतंत्र की चपेट में फँसा हुआ है, वह जीवन की सुख - सुविधाएँ जुटाने के प्रयत्न में लगा हुआ है, और अपनी पत्नी को भुला बैठा है, उसे अपने प्रणय के क्षणों का स्मरण तक नहीं आता, जब कि वियोगिनी नारी राधा अपने प्रणय की स्मृत्तियों में डूबी रहती है ।

संशय की एक रात का मिथक :- कवि नरेश मेहता ।

सन् 1970 के बाद हिन्दी कविता के क्षेत्र में अधिकतर प्रबन्ध कृतियाँ अर्थात् लम्बी कवितायें पुराख्यान या मिथक के सहारे नयी अर्थवत्ता या नयी अर्थ सम्भावनाओं को प्रस्तुत करती हैं, और वही क्रम आज भी वर्तमान कविता में हमें दिखाई पड़ते हैं ।

---

1. कनुप्रिया - डॉ0 धर्मवीर भारती - पृ0 - 74

" संशय की एक रात " के कवि श्री नरेश मेहता ने राम के मिथक का जहाँ आधुनिक वैचारिक धरातल पर एक दीर्घदृष्टि से देखने का सफल प्रयास किया है, वहाँ राम का संशय एक काव्यगत संकल्पना है, जिसका आधार लेते हुए रचनाकार ने पुराख्यान की परिधि से बाहर लाकर उसे वर्तमान युग के साथ जोड़ते हुए, तथा सम्बन्ध स्थापित करते हुए मूल्यगत संक्रमण की संदिग्धता पर दृष्टिपात किया है, वास्तव में युद्ध स्वयं मूल्यों के टकराव की ही परिणति होता है ।

संहार, विनाश, तथा युद्ध मानवीय स्थितियों के बीच बार - बार घटित होने वाले ऐसे प्रश्न हैं, जिनके उत्तर में अपने - अपने समय की राजनैतिक और आर्थिक व्यवस्था ने अपने तरीके से दिये हैं । आधुनिक विज्ञान ने युद्ध का चेहरा इतना भयावह बना दिया है, कि मानवीय विवेक को यह प्रश्न नये ढंग से सोचने पर लाचार कर दिया है, युद्ध को यथा संभव टालने के लिए व्यक्ति किसी सीमा पर समझौता कर सकता है, अथवा नहीं कर सकता, व्यक्तिगत समस्या के लिए नर संहार कहाँ तक श्रेयस्कर है, व्यक्तिगत समस्या कहाँ सामाजिक समस्या का प्रतीक बन जाती है, व्यक्ति कर्मपथ पर चलते हुए इतिहास के द्वारा दिये गये निर्णयों को झेलने के लिए समष्टि के आगे कब समर्पित होता है, रात्रि के संशय का अंधकार उगते सूर्य की संकल्पपूर्ण दीप्ति में कैसे ओझल हो जाता है - इन्ही प्रसंगों को लेकर राम की दुविधा ग्रस्तता की कल्पना की गई है ।"संशय की एक रात" की मूल रचना भूमि यही है । यह खन्ड काव्य चार सर्गों में बँटा हुआ है, रामभाद्र-पद की संध्या में बालुका तट पर अपने पदचिन्हों के चक्रव्यूह से घिरे चिंतामग्न हैं । आदिम मनुष्य को एक आधारहीन भय हमेशा सशंकित किये रहता था, राम के मन में इसी प्रकार का व्यापक नरसंहार तथा युद्ध का भय विद्यमान था, यह भय किसी कमजोर मनुष्य का भय नहीं था, यह विवेकशील तथा मानवता के प्रति प्रेम रखने वाले व्यक्ति का संशय था, रामेश्वरम् के समुद्र तट पर मेघाच्छन्न आकाश के नीचे राम अपनी पुरानी कथा परम्परा से अलग मनोदशा में दिखाई देते हैं, सेतुबंध बन कर तैयार हो चुका है, यह सेतुबंध राम की सेना की नवीन उपलब्धि है, जिससे राम के मन में विजय पाने की सम्भावनाएँ बढ़ती है, किन्तु इसके साथ ही जिस मानवीय सभ्यता के युग में शान्ति दो भयानक युद्धों के बीच के अवकाश के सदृश हों, तो यह सेतुबंध युद्ध की लकीर बन सकता है । कई दिनों से राम का मन संशयग्रस्त है, वानर सेना को भीषण युद्ध की तैयारियाँ करते हुए देख राम के मन में सीता की

आकृति उभर कर उसी प्रकार खो जाती है, जिस प्रकार समुद्र की लहरें राम की कांपती अंगुलियों से बनाये रेखा चित्र को अपने में समेट कर नष्ट कर देती है । राम की मानसिक गुत्थियाँ मौन अंधकार में उलझ जाती है, स्वप्न और विपत्ति के मध्य अस्त व्यस्त राम को अपनी यात्रा बालू में गिर कर खो गये शंख सी लगती है ।

राम एक ऐसे निर्णय के कगार पर खड़े हैं जहाँ से उन्हे अतीत अयोध्या की पीड़ा के लिए उत्तरदायी तथा उनका वर्तमान क्षण स्वर्णमृग के पीछे दौड़ने के कारण संकटपूर्ण तथा उसका भविष्य युद्ध में व्यापक नरसंहार से अनिश्चित है, यहाँ राम भगवान न होकर बल्कि प्रतिपक्ष में दानवता के प्रतीक के रूप में ऐसा लगता है, जैसे :- वह स्वयं रावण हो, इतिहास ने राम को एक ऐसे स्थल पर खड़ा कर दिया, जहाँ पर युद्ध अनिवार्य है, इस भयानक युद्ध में विजय भले ही निश्चित हो, किन्तु सीता की मुक्ति के लिए एक राज्य का विनाश, व्यापक रूप में नरसंहार और यह विजय कितनी सार्थक तथा सामाजिक हितों को कितना स्पष्ट करेगीं, यह सोचकर राम का मन भयभीत हो उठता है, राम की इस पीड़ा को देखकर, तथा भाव विभोर होकर लक्ष्मण राम से प्रश्न करते हैं, एक उदाहरण देखें :-

" तब इस संशय का
क्या है प्रयोजन
देव ।
क्यों है परिताप
और अनुपात किस लिए
× × ×
क्या है अभीप्सित वह
जो कि
इस जल घिरी चट्टान पर
बैठे हुए राम को
मंथता है
पोर पोर
झकझोर देता है निष्ठा को । (1)

राम इसलिए संशयग्रस्त है, कि यह युद्ध बहुत भयानक तथा दीर्घकालीन सिद्ध होगा, यह युद्ध इसलिए कि सीता उनकी पत्नी है और उनकी निजी समस्या

---

1. विभाजित व्यक्तित्व का संशय - डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ० - 185

के लिए दो दुनियाँ के बीच युद्ध में जो संहार होगा, उसका उत्तरदायी स्वयं राम होगें, संस्कृति हीन मनुष्य भले युद्ध तथा संहार का आकांक्षी हो, राम का विवेक और उनकी प्रजा यह कैसे स्वीकार करेगी, यह महा समर, दूसरी तरफ युद्ध की तैयारियाँ पूरी हो चुकी है और राम को सीता की छवि में उनकी आँखों के सामने घूमने लगती है, और राम कह उठते हैं, एक उद्धरण देखें :-

" लक्ष्मण ।
मैं नहीं हूँ, का पुरुष
युद्ध मेरी नहीं है, कुन्ठा
पर युद्ध प्रिय भी नहीं ।
बंधु ।
अपने वंश का मैं दुःख कारण हूँ
इसका ही मुझे
परिताप
है अनुपात
प्रायश्चित भी । " §1§

पिता की मृत्यु, माताओं का विधवा होना, उर्मिला का विरह, भरत का आत्मनिर्वासन, लक्ष्मण का अकारण वनवास, सीता का हरण, पिता के मित्र जटायु का मरण, अंगद का अपमान, देहदाही हनुमान, यह सब मात्र राम को केन्द्र में रखकर समझने की कोशिश की है, राम का यह व्यक्तित्व अपरिचित सा लगता है, किन्तु आधुनिक प्रासंगिकता से कटा हुआ नहीं हैं, राम के मिथक को इसी रूप में देखा गया है । राम की चेतना दाहक बनकर रह जाती है, उनका संकट व्यक्तिगत उनका ही नहीं है, बल्कि यह समूचे विश्व के आधुनिक युग का है, एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" सत्य की मिथ्या पताकाएँ लिये/ अपने स्वार्थ के दे खड्ग -
जन के हाथ में / जो भी लडूँगा युद्ध / होगी आस्था की वंचना ही /
बंधु / ऐसा युद्ध, ऐसी विजय, ऐसी प्राप्ति/ सब मिथ्यात्व है । §2§

नरेश मेहता ने इस काव्य में इतिहास की शक्ति और उसके मर्यादा की स्थापना की है, मनुष्य किस तरह इतिहास के सामने करुण एवं असहाय हो जाता है, इतिहास मानवीय भविष्य का निर्धारण करता है, आज के व्यक्ति की लाचारी

1. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ० - 186
2. संशय की एक रात - कवि नरेश मेहता

और अपना निजी स्वार्थ, तथा अस्तित्व को सार्थक करने के लिए कुछ भी करने को तैयार हैं ।

दूसरी तरफ इतिहास के टूटे हुए सन्दर्भों से तथा उसमें हुए घटनाओं को देखकर आधुनिक मानव अपने सामने दीनभाव या विवशता का अनुभव नहीं करता, किन्तु वह इससे प्रेरणा लेता है, इस कृति में जितनी भी समस्यायें हैं, वह व्यक्तिगत राम की है, वह इस सब से छुटकारा पाकर कहीं पहुँचना चाहते हैं, किन्तु उनका मानवीय विवेक गहन अकेलेपन की वजह से अनिर्णयी हो जाता है, लक्ष्मण के चले जाने के बाद संशय से घिर जाते हैं, वर्षा से भीगे अंधकार में अपने संशय की अग्नि को बुझाने की चेष्टा करते हैं, संशय का सर्पवृक्ष पीपल सा हर - हराता रहता है, उनकी शान्तिवादी इच्छा युद्ध की ओर अग्रसर होती है, एक उदाहरण देखें :-

> " समर्पित है यह / धनुष वाण, खड्ग और शिरस्त्राण/ मुझे ऐसी जय नहीं चाहिए / बाण बिद्ध पाखी - सा विवश / साम्राज्य नहीं चाहिए / मानव के रक्त पर पग धरती आती / सीता भी नहीं चाहिए / सीता भी नहीं / हाय / आज तक मैं निमित्त ही रहा । कुल के विनाश का / लेकिन अब नहीं बनूँगा कारन जन के विकास का ।" [1]

नरेश मेहता "दूसरे सत्तक" के कवि हैं तथा नयी पीढ़ी के कवियों में अधिक सफल कवि कहे जा सकते हैं, "द्वितीय सत्तक" की कविताओं के अतिरिक्त उनकी कवितायें "नकेन के प्रपद्य" में भी संकलित हैं । अब तक उनके कुछ स्वतंत्र काव्य - संकलन भी सामने आ चुके हैं । "बोलने दो चीड़ को" "वनपारवी सुनो" "मेरा समर्पित एकान्त" और "संशय की एक रात" जैसे काव्यों में नये आयाम देखने को मिलता है ।

नरेश मेहता प्रतिभा सम्पन्न कवि के रूप में काव्य में नवीन मानव - मूल्य नये भावाबोध तथा अभिव्यक्ति की सहजता से सहज ही सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है । इनकी कविताओं में जो स्वस्थ सामाजिकता और विचार-शीलता मिलती है, वह इनकी अपनी श्रेष्ठ उपलब्धि है ।

कवि ने अधिकांश अपनी कविता का संस्कार पुरातन ही रखा है, जो परंपरित काव्य - वैभव का रस पीकर नयी चेतना को विकीर्ण करता है । "समय देवता" जैसी लम्बी कविता में रीतिवादी आग्रह प्रबल है, तो दूसरी ओर

---

1. संशय की एक रात - कवि नरेश मेहता

नवचेतनावादी - आधुनिक बोध भी देखने को मिलता है । "नकेन के प्रपद्य में संकलित उनकी कविता में प्रेम और व्यंग्य भी है, प्रेम में मांसलता उनका प्रतिपाद्य नहीं है, किन्तु उनकी नूतन अनु भूतियों की रम्य - छवियाँ दृष्टिगोचर होती है । "विरह" में एकाकीपन हृदय को कितना कचोटता है, यह उनकी "विरह" शीर्षक कविता में देखा जा सकता है ।

उनके प्रेम भरी कविताओं में एक अनोखी भंगिमा है, जिसमें अनदेखा बाँकापन, एक विचित्र थिरकन और ताजगी है, प्रेम की विविध अनुभूतियों में पगी कविताओं में " क्रौंध - बद्ध " "मान" व "अनुरोध" आदि प्रमुख रचनाये हैं । कवि नरेश कुमार मेहता की कविताओं में प्रेम के अतिरिक्त व्यंग्य भी पर्याप्त तीखा और ममन्तिक है । "वेदना - विग्रह" शीर्षक कविता में - "सजा सजाया अपना भी जो टके सेर बेचो, तो भी कोई ग्राहक नहीं, के माध्यम से युग की पाररवी वृत्ति और आधुनिकता पर करारी चोट है ।

इसके अतिरिक्त कवि ने "तशखीर" कविता में आज की नगरीय - वृत्ति में जीने वाली सभ्यता पर व्यंग्य किया गया है । और दूसरी तरफ उन्ही की रचना "मिस मोनिका" में वर्तमान सभ्यता के साये में पली अनेक बेहूदी मान्यताओं पर तीव्र व्यंग्य किया गया है । "नरेश" की अपने सहयोगियों से विलगता का एक कारण उनकी सामाजिक सचेतना है, जो यर्थाथ की भूमि पर पनपी है ।

" पंद्रह - अगस्त " शीर्षक में लिखी गई, उनकी रचना में जीवन के प्रति जो असंतोष है, यह एक ज्वालामुखी के समान प्रत्येक नागरिक के दिल में धधक रहा है, कवि कहता है कि वह दिन अब दूर नहीं है, जिस तरह से हमने आजादी हांसिल किया है, उसी तरह से एक दिन समाज में व्याप्त यह अन्याय को भी समाप्त करना होगा ।

" वनपाखी सुनो" में संग्रहीत कविताएँ प्रायः प्रकृति परथ हैं, इसमें कवि की कितनी वैयक्तिक अनुभूतियाँ, नये प्रतीकों, उपमानों और बिम्बों के साथ उभरी हैं, कवि शिल्प के प्रति अधिक सचेत लगता है, तभी तो वह कथन भंगिमाओं के नये द्वारों का उद्घाटन करने में सफल हुआ है, उसके उपमानों और प्रतीकों में उदात्तता है - एक अभिजात्य गरिमा भी है, और दैनिक जीवन का संस्पर्श भी,

कथन में नाटकीयताऔर प्रश्नोत्तर शैली का विलास है :- कुछ उद्धरण द्रष्टव्य है :-

1. " बैलों के पहली फुहार को शिवा समझकर
नन्दी - सी निज पीठ बढ़ा दी ।
मैदान देश की बधु सरिताएँ भारनता-सी क्यों चलती हैं ?
शायद पानी का शिशु कंधे पर है सोया । " (1)

2. " चावल की घाटी सूखी थी
फटी बिवाई - सी नदियों की गोद बिछी थी ।" (2)

3. यहाँ वहाँ लोग ही लोग हैं
मैं कहाँ हूँ ?
तुम्हारे पैरों के नीचे
मेरा नाम कहीं दब गया है
उठा लेने दो -
मेरे लिए वह मूल्य है । (3)

इसी तरह कवि की अनेक कवितायें सहजता और निश्छद्मता मन को मोह लेती है, "चाहता मन" "कमल वन" "बोलने दो चीड़ को" "एक क्षमा याचना" दिनांत का राजभेंट" "रक्त हस्ताक्षर" और "अनुनय" "शबरी" आदि कविताएँ नयी कविता की श्रेष्ठ कविताएँ मानी जाती है ।

महा प्रस्थान : नरेश मेहता :

इस कृति में कवि ने युधिष्ठिर के माध्यम से राज्य - व्यवस्था और व्यवस्था के दर्शन को व्यक्ति के सापेक्ष हेय ठहरानें का सह प्रयास किया है, और इस तरह वह एक सम्भावना को जन्म देने से पूर्व ही रोक देनें का समर्थक लगतें हैं । राज्य पर अंकुश बनाये रखने के लिए उन्होंने क्या - क्या उपाय नहीं किये, । एक उदाहरण देखें ।

" धर्म और विचार को / स्वतंत्र रहने दो पार्थ ।
अन्यथा यह समाज रहने के योग्य नहीं रह जाएगा ।
किसी भी व्यक्ति के / इतना प्रतिष्ठापित मत करो ।
कि शेष सबके लिए वह अलंघ्य विन्ध्याचल हो जाए । (4)

1. नयी कविता - प्रबन्ध की धरा पर - डॉ० हरिचरण शर्मा - पृ० - 255
2. - वही - पृ० - 255
3. - वही - पृ० - 256
4. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ० - 222

व्यक्ति - स्वातंत्रता की बात कहता हुआ कवि राज्य की गरिमा को व्यक्ति की गरिमा के रूप में मान्यता प्रदान करता है, क्यों कि व्यवस्था का व्यक्ति से बड़े होने का अभिप्राय है, अमानवीय तंत्र, इस तरह कवि ने महाभारत के मिथक के माध्यम से वर्तमान भौतिकोन्मुखी और उपभोगवादी प्रवृत्ति के प्रति अपनी व्याकुलता को व्यक्त करने का प्रयास किया है, इसी तरह राज्य और राज्य व्यवस्था को सामान्य प्रजा के लिए एक षड्यंत्र मानते हुए उसकी अनावश्यकता तो नहीं, किन्तु सर्तकता की ओर अवश्य संकेत किया है ।

कवि नरेश मेहता की काव्य कृतियाँ "महा प्रस्थान" "प्रवादपर्व" तथा "शबरी" मिथक कविता के प्रमुख स्तम्भ है, "प्रवादपर्व" एवं शबरी" अत्यंत साधारण कोटि की रचनाएँ है, राज्य और जनता के रिश्तों को लेकर "महा प्रस्थान" में उन्होंने मौजूदा व्यवस्था की [illegible] उपभोगवादी संस्कृति से घबराहट व्यक्त की है, इस कृति में राज्य द्वारा चारों तरफ से घेर लिये गये आदमी विवशताओं की अभिव्यक्ति है, कथा का कथ्य यह है कि राज्य आदमी के लिए आवश्यक नहीं है, क्यों कि यह एक षड्यंत्र है, सत्ता आ जाने पर व्यक्ति के विचार पर अंधापन छा जाता है, सामान्य व्यक्ति भी पहलवान की भाषा में बात करता है, जब कि सत्ताधारी ठीक इसके विपरीत रथ अथवा बंदूक से रक्त स्नात इतिहास की रचना का निर्माण करता है, यदि हम इस राज्य व्यवस्था को ही सम्पूर्ण समाज और मानवता का प्रतिनिधि मान लेगें तो यह पृथ्वी एक विशाल करागार में बदल जायेगी ।

युधिष्ठिर के "महाप्रस्थान" के मिथक के माध्यम से कवि ने मनुष्य के भीतर "व्यक्ति" को निकालकर "प्रकृति" की स्थापना करने, इतिहास को बहिष्कृत करके निर्वेद सांसारिक - भौतिक सम्बन्ध की जगह उदात्त धर्म तथा अंततः राज्य की जगह अंतःकरण की प्रज्ञा - अग्नि की वकालत की है, युधिष्ठिर तथा स्वान ही अंततः स्वर्गारोहण कर पाते हैं, द्रौपदी, नकुल, सहदेव, अर्जुन, भीम, हिमालय की बर्फ में क्रमशः गल जाते हैं । ﴾1﴿

---

1. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ0 शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ0 - 323

प्रज्ञाचक्षु होते हुए भी युधिष्ठिर को कवि ने विकल्पी मन वाला कर्म पंगु माना है, वह स्वयं विनाश तथा अर्धसत्यों के एक उत्स हैं । इससे क्या यह संकेत नहीं फूटता कि कर्मपंगु आदमी के भीतर ही प्रज्ञा - अग्नि प्रस्फुटित होगी और वही स्वर्गारोहण करेगा ? यह सवाल इसलिए भी उठता है, क्योंकि कर्म से जुड़ने पर कई व्यवहारिक कठिनाईयों के सम्मुखीन होने तथा कौशल पूर्वक रास्ता बनाने की जरूरत होती है, अन्यथा कर्म ही न करो, कवि ने राम के सामाजिक दायित्व के सन्दर्भ में युद्ध का जो संशय "संशय की एक रात" में तोड़ा था, वह "महा प्रस्थान" के सन्दर्भ में उसी कवि ने मानवता समाज और राजनीति को नवीन संशयों के साथ खड़ा कर दिया है । एक उदाहरण देखें :-

" सव्य साची ।
राज्य व्यवस्था के माध्यम से
मनुष्य को
क्यों इन भेड़ियों का भोज्य
बना देना चाहते हो ?
इन साधारण जनों से तुम्हारी क्या शत्रुता है पार्थ ? (1)

कवि नरेश मेहता ने युधिष्ठिर और पांडव के माध्यम से आधुनिक राज्य व्यवस्था के साम्राज्यवादी तथा भोगवादी स्वरूप के विकास की कल्पना करते हैं, किन्तु वे भी एक सीमा के बाद यह नहीं समझ पाते कि राजा और शासक नहीं, बल्कि जनता का वर्ग एक सीमा के बाद धीरे - धीरे इस बात को सोचने लगा है, तथा वह साम्राज्यवादी भोगवादी राज्य - व्यवस्था के विरूद्ध बगावत करने के लिए जनता को संगठित कर रहा है, जनता का यह संगठन एक दिन क्रान्ति कर देगा, और उस राज्य व्यवस्था की ऐसी राजनीति को पलट कर रख देगी, जिस राज्य - व्यवस्था ने इतने वर्षों तक सिर्फ अर्थ लोलुपता, निरंकुशता, शोषण और रक्तपात से धरती को कारागार में बदलती आयी है । आधुनिक विचारकों ने सामाजिक, आर्थिक स्थितियों के विकास के ऐसे स्तर की कल्पना की है, जहाँ राज्य का स्वतः विलोप हो जाता है । "महाप्रस्थान" में कवि नरेश मेहता ने राग-द्वेष हीनता को भी तीव्र प्रक्रिया का कर्त्ता माना है, "महा प्रस्थान" का युधिष्ठिर स्वप्न रक्षण के लोभ के कारण ही द्यूत युद्ध में भाइयों और पत्नी को साधारण वस्तुओं की तरह दाँव पर लगा देता है, जहाँ युधिष्ठिर में खुद के प्रति आसक्ति बढ़ी वहीं मानवीय

---

1. महा प्रस्थान - कवि नरेश मेहता -

सम्बन्धों में विकार आया, और मूल्यों का विघटन हुआ, युधिष्ठिर के अतिरिक्त अन्य पात्र जैसे भीम, अर्जुन, और द्रौपदी घोर व्यक्तिगत मान - अपमान, ईर्ष्या-द्वेष और स्वार्थों के लिए युद्ध को निमंत्रण देते है, और अपने अतीत को याद करते ही पश्चात्ताप की अग्नि में डूब जाते हैं किन्तु युधिष्ठिर का कथन है, कि वह युद्ध अपने कर्तव्य को निभाने के लिए लड़ा है, इसी लिए वह अपने किये गये कर्मों के प्रति पश्चात्ताप नहीं करता है । और वह कहता है कि :-

" एक तात्कालिक धर्म भी होता है,/ कर्तव्य ।।/
जब युद्ध कर्तव्य हो गया / तो अनासक्त होकर /
वह भी किया / इसीलिए उन दिनों की वे स्मृत्तियाँ /
मुझे भी स्मरण आती हैं / पर सालती नहीं । §1§

" महा प्रस्थान " का युधिष्ठिर यह जानता है कि निर्वेद की स्थिति में ही मूल्यान्वेषण किया जा सकता है, और उन्होंने निरासक्त होकर मूल्यों का अन्वेषण किया है, एक उद्दरण दृष्टव्य है :-

" भीम / मैं राज्यान्वेषी नहीं / मूल्यान्वेषी रहा हूँ / राज्य जैसी
अपदार्थता के लिए / अपने ही रक्त / कौरवों का नाश / मेरे लिए
असम्भव था बन्धु / असम्भव था / किसी भी साम्राज्य से बड़ा है /
एक बन्धु / एक अनाम मनुष्य ।। §2§

" महा प्रस्थान " में द्रौपदी कहती है, कि राजा तो व्यक्ति को खरीद कर दास बना लेता है, जब कि राजाश्रित व्यक्ति में राजा का विरोध करने की शक्ति ही नहीं रहती, एक उदाहरण देखें :-

" कौन नहीं था वहाँ ? / धृतराष्ट्र, भीष्म या द्रोण ।
नहीं किसी ने देखा ? / उस दुर्योधन ने जंघा पर,
बलात् बैठाया ।" §3§

राज्य और सत्ता के मद में अंधे होकर दुर्योधन ने द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित किया, उसे मात्र वस्तु बना दिया, और वहाँ बैठे सभी पारिवारिक तथा हार्दिक सम्बन्धों का अपमान किया, अपने उसी अपमान का बदला लेने के लिए द्रौपदी ने कौरव वंश के ध्वस्त करने की प्रतिज्ञा ली थी ।

---

1. महा प्रस्थान - कवि नरेश मेहता - पृ0 - 44
2. वही - पृ0 - 86
3. वही - पृ0 - 57

एक उदाहरण देखें :-

" इतना अपमान / व्यक्ति को वस्तु बनाया ? / पुण्य हो गई / प्रियापदी कृष्णा / इस भरी सभा में ? / नहीं - नहीं, अब कौरव-वंश नहीं रह सकता । " ॥1॥

युधिष्ठिर तो जानते हैं कि दुर्योधन तो राज्य को मजबूत बनाने के लिए ही द्रोण और विदुर जैसे महान व्यक्तियों को उपभोग की वस्तु बनाये रखा, एक उदाहरण देखें :-

" क्या द्रोणाचार्य की इस विषमता के लिए / राज्य दोषी नहीं ? / क्या इस व्यवस्था ने ही / उस सात्त्विक परम मेधावी को / इस स्थिति तक नहीं पहुँचाया कि / मात्र जीवन - निर्वाह के लिए / अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व / ज्ञान और विवेक तक / राज्य को सौंप देना पड़ा ।/ क्यों ? / इसलिए कि राज्य उनका - भरण - पोषण कर रहा था / कितना बड़ा मूल्य / एक विवेकवान को चुकाना पड़ा सव्यसाची । ॥2॥

यदि राज्य कृपा के पात्र होने के कारण द्रोणाचार्य का घोर अमानवीकरण होता है, तो राज्य - कृपा न मिलने के कारण विदुर भी अमानवीकृत होते गए हैं, एक उद्धरण द्रष्टव्य है :-

" विदुर की ज्ञान - सम्पन्नता के लिए / किस कौरव के मन में, आदर था अर्जुन ? / राजवंशी होने पर भी / राज्य कृपा के पात्र न होने के कारण / परम भागवत विदुर / एक अर्थहीन चरित्र बनकर रह गये । " ॥3॥

महा प्रस्थान के कवि नरेश मेहता का मानना है, कि स्वार्थ प्रेरित राज्य सत्ता अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए व्यक्ति का घोर अपमान कर सकती है, और मौका मिले तो वह उसे अपनी उपभोग की वस्तु भी बना दे, सत्ता सम्पन्न व्यक्ति, सत्य, न्याय, धर्म, भातृ - भाव और अन्य हार्दिक सम्बन्धों को तोड़ देता है, उसे सिर्फ अपना निजी स्वार्थ ही दिखाई पड़ता है, और इसकी चपेट में परम बुद्धिजीवी वर्ग भी आकर भ्रष्ट हो जाता है, और जब सत्ता सम्पन्न लोग भ्रष्ट हों, और अपने स्वार्थ के लिए व्यक्ति का इस्तेमाल कर रहें, हों तो वह जनता का कल्याण कैसे कर सकता है, इस कृति में नरेश मेहता ने भ्रष्ट राज्य - सत्ता

---

1. महा प्रस्थान - कवि नरेश मेहता - पृ० - 58
2. - वही - पृ० - 107
3. - वही - पृ० - 108

के कारण हो रहे मानव - अवमूल्यन का चित्रण करके उसका विरोध किया है ।

आत्मजयी का मिथक : कुँवर नारायण

कुँवरनारायण की लम्बी कविता "आत्मजयी" में एक अमूर्त्त यथार्थ की खोज के लिए जीवन से भागने की सौन्दर्यवादी तत्परता साफ दिखाई पड़ती है ।

कवि ने इस कृति में अपने प्रयोगशील अन्वेषण की विचार-धारा को मिथकीय अनुभूति में ढालने के लिए कुंवरनारायण ने नचिकेता जैसे पात्र को आधार बनाया, वह "कठोपनिषद्" के काल के सामाजिक द्वन्द्वों का मिथकीय नायक था, "वाजश्रवा" की राजनीति से हैरान होकर राज्य से बड़े सत्य की तलाश में उसने "यम" से मुलाकात की और औपनिषदिक आत्मसत्ता की खोज की, वैदिक राज्य की हिंसा और दैवी तानाशाही के खिलाफ औपनिषदिक आत्मसत्ता के महत्व की स्थापना हुई थी यह इन्द्र और तत्कालीन राजनैतिक विधान की अस्वीकृति थी । इसमें निषेध ही नहीं बल्कि आत्मसत्ता केन्द्रित नयी संस्कृति के प्रचार प्रसार का एक भरसक प्रयास था, आज की व्यवस्था को आध्यात्मिक ढांचा देकर उसे मनुष्य के लिए सहनशील बनाने की गतिशील योजना भी थी, इसी अर्थ को केन्द्र में रखकर कवि ने नचिकेता का मिथक चुनकर उसे ऐतिहासिक अंतर्वस्तु में कट जाना ही पसंद किया, और सिर्फ एक मिथकीय रूप चुना, अपनी व्यक्ति गत संवेदना को रहस्यात्मक ढ्ग से आगे बढ़ाने के लिए नया मोड़ दिया ।

नचिकेता के सत्य की खोज परिवर्तनशील ब्राह्य वास्तविकता से बिल्कुल कटकर चलती है, और अंत संदर्भात्मक हो जाती है, नचिकेता सुख से भागता है, उसके पास बाह्य जीवन के स्तर पर सुख न होकर दुख तथा जीवन की सामान्य तकलीफें होती, वह उनसे कैसे कहता या आत्मोन्मुख होता ? वह अपने को सत्य की खोज में काल को किस प्रकार सौंपता ? "वाजश्रवा" जैसे समृद्धिशाली कितने नचिकेताओं के बाप हैं ? नचिकेता की आकांक्षा है - एक उदाहरण देखें :-

" इन मिथ्या सत्यों से अब मुझको मुक्त करो
मैं युग निर्वासित हूँ ।
आजीवन वनवासी ।
राजपाट परित्यागी ।

भटक रहा किसी ध्येय विविध पंथ सन्यासी ।
घर से बहिष्कृत हूँ । " §1§

"आत्मजयी" में "वस्तुवाद" और "आत्मवाद" का कलात्मक संघर्ष सौन्दर्यवादी स्तर पर व्यक्त हुआ है, जीवन के भौतिक सुखों की ओर न झुककर किसी महान अर्थ में जी पा सकने की व्याकुलता नचिकेता को सत्यान्वेषण के लिए प्रेरित करती है । §2§

" आत्मजयी " के द्वारा नयी कविता के उस खेमें को समझा गया, जिसमें जीवन के तीखे प्रसंगों तथा महान अर्थों में अन्तर आ गया था, समाज की कठोर वास्तविकता और व्यक्तित्त्व के परम सत्यों में संघर्ष होने लगा था, इन दोनों के बीच में संस्कृति की स्थिति सांदिग्ध अवस्था में हो चली थी, किन्तु इस परम्परा के अन्तर्गत मृत्यु का विश्लेषण करना था, जो कला और समाज दोनों की हो सकती है । यह अलगाव पूरे देश से देशातीत सत्य के लिए है, मध्यकालीनतावादी अर्थों में यह गृह - परित्याग एवं निर्वासन, राम की तरह सामाजिक सांस्कृतिक प्रासंगिकता से युक्त भी नहीं है, अस्तित्ववादी आयामों में यह नव मध्यकालीनतावाद का पुनर्जागरण है । " §3§

जिस बालुका तट पर बदलती हुई सागर - मुद्राओं को आत्मसात् करते हुए कुंवरनारायण रचनास्त थे, वह अभी उसी जल से गीला था, समुद्र उतरते समय अपने शंख सीपी छोड़ गया था, जिनमें प्रयोगशील कविता की समूची यात्रा खोयी हुई थी, बालुका तट के पास की उन सड़कों और पगडंडियों की ओर बढ़ना उसके लिए मुश्किल था, जिधर कस्बे और गाँव बसे हुए थे, और लोगों का जीवन यंत्रणाओं से बोझिल था, नचिकेता को यह समुद्र अवचेतन के स्तर पर बहुत परेशान करता है :- एक उदाहरण देखिए :-

" वृत्त तट से हटा / उदास अकेला सागर / कहीं गहरे /
उसके असंतोष ठहरे / वह जो बीत गया / निष्प्रयोजन सा एक सुख/
जहाँ से अभी - अभी समाप्त होकर / लौटा वह अनर्थ और वेस्वाद/
मनों कुछ पाकर नहीं खोकर / ज्वा के बाद /
तट को छूकर सकुचाता सागर । §4§

---

1. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ0 शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ0 - 303
2. -वही - पृ0 - 302
3. -वही - पृ0 - 303
4. -वही - पृ0 - 303

कुंवरनारायण ने बौद्धिकता के स्तर पर मृत्यु की यंत्रणाओं को भी व्यक्त किया है, मृत्यु की गोद में जीवन का अर्थ अंततः भौतिक सुखों को त्याग कर ज्ञान की निरंतर आत्मखोज में केन्द्रित हो जाता है, ज्ञान की प्रक्रिया द्वारा स्वातंत्र्य की खोज जीवन की सबसे मूल्यवान प्रक्रिया बन जाती है, इस प्रक्रिया में शरीर भी अपने को स्वतंत्र कर लेती है, अहंमुक्त हो जाती है, नचिकेता अपने शरीर को "मुझे" के रूप में नहीं देखता, बल्कि एक निर्वैयक्तिक अध्यात्मिक सत्ता के रूप में देखता है ।

नचिकेता का शरीर त्यागना वस्तुतः एक मिथक है । वह पीड़ा की सामान्य संभावना से आत्मा को स्वतंत्र करने के लिए मनन की आध्यात्मिक प्रक्रिया से गुजरता है, मनन से ही सृष्टि के रूप में इच्छाओं का विकास होता है, और संसार अंतवास्तविक रूप ग्रहण करता है, यम सारा रहस्य खोल करके कहता है, कि जीवन का सारा खेल भीतर चलता है, बाह्य जगत तो अभ्यन्तर के स्वप्न का प्रतिफलन भर हैं, एक उद्गरण देखें :-

" यह तुझसे उत्पन्न हुआ संसार/ स्वप्न है तेरा ही /
तेरी इच्छाओं का विकास है / तू पायेगा / बाहर के इस -
अंधकार से / कहीं बड़ा भीतर प्रकाश है / तेरे होने न होने का /
बाहर से अधिक पुष्ट / भीतर प्रमाण है / उसे सिद्ध कर /
तू पायेगा / वहीं स्रोत्र है / वहीं मुक्ति है / वहीं त्राण है । (1)

नचिकेता मरता नहीं है, किन्तु वह काल प्रवाह में निरन्तर आत्म खोज करके देखता है, कि प्रकाश और चित्ति की सारी लीला आत्मा के भीतर है, त्राण और मुक्ति भी वहीं है, कुंवर नारायण की यह कविता अपने आधुनिक ढांचे में भी बौद्धिक रहस्यात्मकता को व्यक्त करती है । (2)

" आत्मजयी " स्थिर संवेदना का काव्य है, नचिकेता यम से मिलने के पहले जीवन के बारे में जितना जानता था, वह उस ज्ञान के आलोक में वाजश्रवा की परम्परा से जितना लड़ा था, उससे वह आगे नहीं बढ़ता, बाहर का संसार व्यक्ति की इच्छाओं का विकास है, तथा बाहर के छोटे अंधकार से आत्मा के भीतर का प्रकाश बड़ा है, यम की यह शिक्षा नचिकेता के लिए पुरानी बात होनी चाहिए थी, क्यों कि वह पहले ही अनुभव कर चुका था । एक उद्गरण दृष्टव्य है :-

---

1. नयी कविता का आधुनिकतावादी संसार - डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ० - 305
2. - वही - पृ० - 306

" बाहर नहीं है संघर्ष यह / द्वन्द्व प्रतिद्वन्द्व / घात, प्रतिघात /
कहीं अन्दर है / यह समस्त विश्वरूप / जो कभी कुरूप कभी -
सुन्दर है / बाह्य नहीं / मानव का उथल - पुथल अन्दर है /
आत्मा गगन स्थल / जहाँ तारावत ऊर्जा की स्फुलिंग अणुगतियाँ /
अंकित है । §1§

ऐसे कई उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आत्मजयी में पौराणिक मिथकों का प्रयोग आधुनिक सन्दर्भों अर्थात् आधुनिक युग की प्रमुख समस्याओं को उद्दृत किया गया है ।

1. घोर भौतिकता ।
2. उच्चतर, मूल्यों का पतन, आत्मिक स्तर पर विघटन और विसंगति ।
3. नयी और पुरानी पीढ़ी का संघर्ष ।
4. जीवन को सार्थक रूप में जीने की आकांक्षा । §2§

इस कृति में कठोपनिषद् से लिए गये नचिकेता के कथानक को थोड़ा बहुत परिवर्तन करके आधुनिक रूप में देखा गया है, न कि पौराणिक दिव्य कथा के रूप में इस पुरा कथात्मक आख्यान को इस रूप में ग्रहण किया गया है, कि वह आज के मनुष्य की मनःस्थिति को व्यवस्थित अभिव्यक्ति देने में समर्थ हो, नचिकेता की मनःस्थिति को आज के मनुष्य की मनःस्थिति देखने में आती है, कुछ उद्दरण प्रस्तुत है :-

1. " एक स्तर पर / विद्वेष, क्रूरता, हिंसा, बेईमानी /
सब कुछ इतना सम्भव है कि स्वाभाविक लगे /
और उसी स्तर पर हममें से हर एक जी सकता है /
पागलों की तरह / एक दूसरे से त्रस्त, पीड़ित और अपमानित ।" §3§

2. " लेकिन मैं रोता गया आत्मा को व्यय करके,
बदले में केवल एक कुन्ठा संचय कर के । §4§

इस कृति में नचिकेता और वाजश्रवा दोनों नयी और पुरानी पीढ़ी के संघर्ष का प्रतीक है, और इसके साथ ही वाजश्रवा वैदिक कालीन वस्तुवादी दृष्टिकोण का प्रतीक है, और नचिकेता उपनिषद् कालीन आत्मा पक्ष का प्रतीक है, नचिकेता के अनुभव आज के मनुष्य के अनुभव हैं, एक उद्दरण देखें :-

---

1. आत्मजयी - कुंवरनारायण §2§ आत्मजयी - भूमिका - पृ0-7
2. -वही - पृ0 - 7 §4§ -वही- पृ0 - 7

" तुम्हारी दृष्टि में मैं विद्रोही हूँ
क्यों कि मेरे सवाल तुम्हारी मान्यताओं का उल्लंघन करते हैं,
नया जीवन बोध सन्तुष्ट नहीं होता
ऐसे जबावों से जिनका सम्बन्ध
आज से नहीं अतीत से है,
तर्क से नहीं रीति से है । " ﴾1﴿

" आत्मजयी " में ली गई समस्या नयी नहीं है, यह उतनी ही पुरानी है, जितना जीवन और मृत्यु सम्बन्धी मनुष्य का अनुभव । ﴾2﴿

इस समस्या को और विस्तृत कर के इसे नये सन्दर्भ के रूप में देखने का प्रयास हुआ है, नचिकेता स्वयं इसमें यथार्थ को खोजता है, जो व्यक्ति के भीतर ही होता है, जिसे वह अपने भीतर ही खोजता है । नचिकेता आगे कहता है, कि वह जो जीवन जीता है, भोगता है, जिसे वह समझना चाह रहा है, वास्तव में वह जीवन को नया अर्थ देना चाहता है, एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" मैं जिन परिस्थितियों में जिन्दा हूँ,
उन्हें समझना चाहता हूँ - वे उतनी ही नहीं
जितनी संसार और स्वर्ग की कल्पना से बनती हैं
क्यों कि व्यक्ति मरता है,
और अपनी मृत्यु में वह बिल्कुल अकेला है,
विवश,
असान्त्वनीय । ﴾3﴿

एक कन्ठ विषपायी का मिथक : 1963 कवि दुष्यन्त कुमार

साठोत्तर कविता में परम्परा भंजक, विद्रोही तथा सामाजिक विषमता का जहर पीते शिव को एक प्रमुख अभिव्यक्ति मिली, कवि दुष्यन्त कुमार ने अपने काव्य - " एक कन्ठ विषपायी " में शिव के सारे अंतर्विरोधों को साठोत्तरी कविता की भूमि पर उद्धृत किया है, इस कृति में दक्ष यज्ञ के विध्वंस के संदर्भ में मानव के उस प्राचीन विद्रोह को सार्थक प्रासंगिकता प्रदान की गई है, जो परम्परा के अनुसार समाज की रचना के विरूद्ध व्यक्ति के मन में यह भाव उठते हैं, और पूरे समाज में फैल जाते हैं, यह विद्रोह कभी - कभी अपने लक्ष्य से अलग हो जाता है, शिव जी का विद्रोह भी एक बार निजता के आग्रह के कारण भटक गया, उनकी इस सच्ची वेदना को ज्ञान का सहारा कैसे प्राप्त हुआ, प्रस्तुत कृत्ति में कवि ने इसे उद्घाटित किया है ।

1. आत्मजयी - पृ0 - 10 - 11
2. - वही - पृ0 - 8
3. - वही - पृ0 - 11

जाति प्रथा सामाजिक शोषण का एक विषैला नाग है, धार्मिक बंधनों में जकड़ा भारतीय समाज में प्रेम विवाह, अक्सर दुखदायी होता है, शिव ने भी परम्परा भंजन कर के सती का वरण किया था, इसी कारण उन्हे यज्ञ में आमंत्रित नहीं किया गया, सती की माता वीरिणी में दया है, वह मानवीय सम्बन्धों के आधार पर शिव को स्वीकृति देना चाहती है, किन्तु दक्ष के मन में परम्परावादी और समता विरोधी का भूत सवार था, समाज में अपनी प्रतिष्ठा के लिए वह चिन्तित था, इस प्रकार दक्ष शिव के बारे में कहते हैं :-

" क्या आवश्यकता थी बोलो / इस रूपक के आलम्बन की /
व्यर्थ प्रेम के नाम / हमारी लोक हंसाई बदनामी की /
परम्पराओं के खन्डन की / इस पर भी तुम / उसे यज्ञ में -
आमंत्रित करने की / अभिलाषा रखती हो । §1§

शिव और सती का विवाह सम्पूर्ण मानव जाति को एक नया रूप प्रदान करती है । इसमें यह भी स्पष्ट हो जाता है, कि प्रेम में किसी भी प्रकार का बंधन नहीं होता, सामाजिक अवहेलना सहकर शिव पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने प्रेम विवाह किया था ।

कवि दुष्यन्त कुमार ने दक्ष की मूर्ति एक जन विरोधी शासक के रूप में तैयार की, सर्वहत नाम का एक काल्पनिक पात्र भी इस काव्य नाटक में प्रस्तुत किया, इस पात्र को कवि ने नाटककार ने राजलिप्सा तथा युद्ध के आतंक में जी रहे ऐसे व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है, जो आधुनिक प्रजा का प्रतीक बन जाता है, यह एक प्रक्षेपित पात्र है ।

कवि दुष्यन्त कुमार इस बात को स्पष्ट करते हुए आगे कहते हैं, कि शिव केवल संहार के ही नहीं बल्कि सृजन के भी मिथक हैं, शिव का अर्थ है, शोषित पक्ष के एक बड़े जनसमूह की भावनाएँ, विचार पद्धति और जिजीविषा, शिव ने अपने जीवन मूल्यों को दक्ष के विध्वंश के बाद विकसित नहीं किया, किन्तु उसे अपने कन्धे पर रखा, अधझुलसे शव के रूप में, यह आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं की ओर संकेत है, कि इसमें गलित सामंती मूल्यों और रूढ़िग्रस्तता का स्थान अभी भी ऊँचा है, सामाजिक विसंगतियों का बोध सर्वहत को होता है, वह अनुभव करता है, कि

1. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ० - 210

जनता का पूरा जीवन अधझुलसी परम्परा और आधुनिक विसंगतियों के द्वारा यातना ग्रस्त है, जनता सब कुछ देखकर भी नहीं देख पा रही है, पहले उसके पास एक रूढ़िग्रस्त परम्परा थी, जिसमें उसका विश्वास था, अब उसके पास कोई विश्वास नहीं है । सर्वहत के चारों तरफ नीरवता, ताजा जमा रक्त सड़ी हुई लाशें हैं, उसे सिर्फ नये मूल्यों की तलाश है, शवहीन और कला युक्त शिव की तलाश है उसका उद्देश्य सिर्फ सोयी हुई जनता की संवेदनाओं को जागृत करना है, और उसके जीवन को नयी दिशा दें, मानवीय जीवन के मूल्यों को विश्वास देने के साथ - साथ कला को भी संवेदनशील एवं विचारशील बनाती है, "कवि दुष्यन्त कुमार " ने इस कृत्ति के द्वारा साठोत्तरी कविता की परम्परा में एक नया अध्याय जोड़ा है ।

" कवि दुष्यन्त कुमार " ने शिव के सामाजिक व्यक्तित्व के साथ - साथ उनके व्यक्तिगत व्यक्तित्व के संवेदनशील पक्षों को समझने का ही नहीं बल्कि उसे सार्थक रूप देने का प्रयास किया है, यह प्रयास युद्ध जनित विकृति का समर्थन नहीं, शिव के मोह को धीरे - धीरे दूर करने की कोशिश है, अबौद्धिक मोह को दूर करने के लिए पहले पीड़ा को समझना, और व्यक्ति की आंतरिकता का आदर करना चाहिए, ब्रह्मा, तथा विष्णु ने शिव की गहन वेदना को समझकर उनके आन्तरिक व्यक्तित्व को सृजनात्मक स्वीकृति प्रदान करते हैं, ब्रह्मा कहते हैं :-

" कल्पना फलक पर उभर आता है, बार - बार
महादेव शंकर का दुर्निवार
पीड़ा से भरा हुआ नीलकंठ
पांचों मुख
दुख की अभिव्यक्ति में निरत, असफल
मस्तक में खौल रहा गंगा जल । " (1)

कवि ने शिव का प्रचंड आधुनिक चित्र खींचा है, केवल वैदिक देवताओं को ही नहीं, ऋषि, मुनि, बुद्धिजीवी, सभी को जो दक्ष सत्ता के प्रत्यक्ष गठबंधन में शामिल थे, शिव का कोप भाजन बनना पड़ा, इसी तरह सत्ता और व्यवस्था पोषकों के हिंसक गठबंधन को जनता के गुस्से का सामना करना पड़ता है, जनता अन्याय के विरूद्ध शान्तिपूर्ण उपायों को विफल होते देखकर हिंसक क्रान्ति के रोमानी रूझान से उद्वेलित हो जाती है, शिव जन पीड़ा से भर जाते हैं, उनको कालजयी चेतना पर लौकिक संवेगों की रेखाएँ अंकित हो जाती हैं, एक प्रश्न खड़ा हो जाता है,

---

1. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ० - 214

समस्त युग जीवन के समक्षः- एक उद्धरण दृष्टव्य है -

" क्यों वे पार्थिवता को
कंधों पर लटका
ज्ञानवंत होकर भी क्रोधित उद्वेलित हैं ? " §1§

और इसके साथ ही कवि ने शिव की आत्मकेन्द्रित मनः स्थिति को पहचानने तथा समझनें की कोशिश की है, एक उदाहरण देखें :-

" सोचता हूँ / यही दन्ड क्या कम है / कि आज वे जिस स्थिति में हैं /
क्रोध के बहाने कराहते हैं / उन्हें किसी सत्य से जुड़े रहने /
और टूट जानें का दुविधायुत भ्रम है / करते हैं कुछ /
किन्तु कुछ करना चाहते हैं / अपनी प्रिया के संदर्भों में /
दुहरा जीवन जीते हैं शिव शंकर / यही दन्ड उनको क्या कम है /
जो बार - बार / कालकूट पीते हैं शिव शंकर । " §2§

शिव का मिथक आधुनिक जीवन की उन तमाम समस्याओं को साथ लेकर चलता है, जिसमें समस्त परिवेश में मनुष्य की घुटन और यातना को व्यक्त करती है, जिसका परिणाम वह भुगत रहा है, और एक अलगाव की जिन्दगी जी रहा है, और इस जीवन का विष उसी प्रकार पान कर रहा है, जिस प्रकार शिव ने किया था ।

प्रस्तुत काव्य में मिथक का प्रयोग " जर्जर " रूढ़ियों और परम्परा के शव से चिपटे हुए लोगों के सन्दर्भों में प्रतीकात्मक रूप से आधुनिक पृष्ठभूमि और नये मूल्यों को संकेतित करने के लिए किया गया है । §3§

प्रस्तुत कृति में कुंवरनारायण ने संकेतित कुछ प्रमुख आधुनिक संदर्भ को भी उठाया है ।

1. " अनाधिकार रक्त पात । §4§
2. शासक की भूलों का उत्तरदायित्व प्रजा को वहन करना पड़ता है, और इसके साथ ही उसे अपने गलित मूल्यों का दन्ड भी भुगतना पड़ता है। §5§
3. शासन की मर्यादा खोने वाले शिव जैसे उच्चाधिकार - युक्त व्यक्ति के लिए दन्ड की माँग । §6§

---

1. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ0 शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ0 - 215
2. - वही - पृ0 - 215
3. एक कन्ठ विषपायी - आभार कथा - कवि कुंवर नारायण - पृ0 - 2
4. - वही - पृ0 - 43
5. - वही - पृ0 - 49
6. - वही - पृ0 - 59

4. सत्ता, मान, सम्मान/ प्रतिष्ठा के लालची / अहिंसक कहलाते हैं/ माँस नहीं खाते / मुद्रा खाते हैं / ॥1॥

5. लौकिक नेताओं का प्रजातंत्र / उत्तेजना भीड़-भाड़ नारेबाजी प्रजातंत्र/ में यह मनमानी नहीं चलेगी, और समस्याओं के समाधान के लिए / प्रतिनिधि - मंडल / ॥2॥

6. शरणार्थी समस्या । ॥3॥

7. शासक की दुर्बल स्मरण - शक्ति । ॥4॥

8. प्रयोजिनी समाज । ॥5॥

इसका तात्पर्य यही है कि मृत परम्परा के शव से शिव चिपके रहते हैं और अपने आपको नये सत्य से नहीं जोड़ पाते, और निर्माता के बनाये बंधनों में फँस जाते हैं, इस तरह शंकर परम्परा के शव से चिपके हुए लोगों के प्रतीक है, आधुनिक मनुष्य की तरह शंकर भी दुहरा जीवन जीते हैं । सती का शव पार्थिवता, परम्परा का प्रतीक है, सर्वहत न्याय और रोटी माँगने वाली, अकारण पीड़ित जनता का प्रतीक है, विष्णु ब्रह्मा शासक वर्ग तथा इन्द्र, वरूण और कुबेर बुद्धिजीवी वर्ग के मिथक है । ॥6॥

कवि कुंवर नारायण ने "एक कन्ठ विषपायी" में मूल रूप से युद्ध की समस्या को उठाया है, पुरातन घटना के आधार पर यह प्रतिपादित किया गया है, कि "युद्ध सामूहिक आत्मघात हैं, इसके पीछे कोई जीवन - दृष्टि नहीं है, मात्र केवल आग्रह ही है । ॥7॥

इस तरह समस्त काव्य में नयी पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी के बीच हो रहे द्वन्द्व को तथा मानव जीवन के मूल्यों को एवं युद्ध जैसी भीषण समस्या को कवि ने मिथकीय रूप में प्रस्तुत करने का एक सफल प्रयास किया है ।

---

1. एक कन्ठ विषपायी - आभार कथा - कवि कुंवरनारायण - पृ0 - 58 - 59
2. - वही - पृ0 - 65
3. - वही - पृ0 - 100 - 110
4. - वही - पृ0 - 108
5. - वही - पृ0 - 110
6. - वही - पृ0 - 112
7. - वही - पृ0 - 105

सूर्य पुत्र :- 1975 जगदीश चतुर्वेदी

इस काव्य के माध्यम से कवि ने आज की मानवीय संवेदना, भोगी हुई कटुता, और धुंधलाते हुए अस्तित्व को अभिव्यक्ति दी है, कर्म का निरूपण एक अन्त: संघर्ष को भोगने वाले निरासक्त योद्धा के रूप में करते हुए कवि ने विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के बीच हो रही दलबन्दी, तथा जातिवाद की इस गन्दी चाल के बीच में आम जनता पिस रही है, उसकी इस लाचारी को कवि ने मिथक के माध्यम से चित्रित किया है, आज की इस विभीषिका से संत्रस्त मानव की भयावह तथा कंपा देने वाली स्थिति को कर्ण के मिथक के द्वारा व्यक्त किया गया है, इसके अलावा इस कृति में अत्यधिक वर्णनात्मकता के बोझ से दवी अर्थ - संभावना, को अपने संश्लेष में कर्ण और कुन्ती के चरित्र विकास के साथ - साथ उनमें आधुनिक दृष्टि को समाविष्ट किया गया है ।

> " सुख के विरोध में बनाये गए / ये सामाजिक नियम ये संहिताएं /
> यह प्राण - घातक प्रणाली / इनको मैं ठोकर मार सकती हूँ दिनेश/
> यदि तुम सहारा दो । §1§

जगदीश चतुर्वेदी ने इस काव्य में कुन्ती के चरित्र को एक महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है, "सूर्यपुत्र" काव्य में इसे वर्णित करके कुन्ती के सम्बन्ध में दूसरी बार विचार करने के लिए बाध्य करते हैं, यौवन अपने पूर्ण विकास में एक उफनती हुई नदी के समान होता है और इसे अपनी परिपक्वता में समपर्ण की स्थिति से इंकार नहीं किया जा सकता है, इस आन्तरिक सम्बन्ध को जगदीश चतुर्वेदी ने मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक मूल्य स्तर देने का प्रयास किया है, जो स्वाभाविक है, क्यों कि सृजन के लिए कोई भी प्रक्रिया हो, सृजन कभी अवैध नहीं होता, अत: सृजन को वैध मानते हुए, समस्त सामाजिक नियमों, आचार, विचार, को चुनौती देते हुए, कुन्ती को दृप्त नारीत्व के गुणों से संपृक्त महिला व्यक्तित्व के रूप में प्रतिष्ठित किया है, इस लिए "सूर्यपुत्र" काव्य की कथा की दृष्टि से कम किन्तु आधुनिकता की दृष्टि में यह एक सफल कृति है । §2§

साठोत्तरी मिथक कविताओं में मुख्य रूप से दो तरह की रचनायें आती हैं, जो कि खन्ड काव्य और कुछ छोटी - छोटी कविताओं के रूप में है, इन रचनाओं में मिथकीय प्रसंग एक "माध्यम" के रूप में आते हैं, जो आज के

1. समकालीन हिन्दी कविता - डॉ0 विनय अश्विनी पाराशर-स0-पृ050
2. -वही- पृ0 - 51

वैचारिक द्वन्द्व को प्रकट करते हैं, मिथकों का यह वैचारिक सम्बन्ध समकालीन रचनात्मक सन्दर्भ मिथकों को नई अर्थवत्ता और नयी व्याख्या प्रदान करते हैं ।

अकविता के कवि जगदीश चतुर्वेदी द्वारा रचित "खन्ड काव्य" "सूर्यपुत्र" में उन तमाम अकविता के तत्वों जैसे - यौन कुन्ठा अश्लील बिम्बों, विभत्स, कामोदीनपन आदि का उल्लेख इसमें नहीं किया, किन्तु इस कृति में उन्होंने भाषिक "उदान्तता" का भर पूर परिचय दिया है, इस कृति में कर्ण के मिथक का रचनात्मक रूपान्तरण प्राप्त होता है ।

स्वयं कवि ने अपनी भूमिका में कहा है, कि "महा भारत" के एक प्रमुख पात्र कर्ण को मैनें इस काव्य का मूल स्रोत्र बनाया और उसके जीवन की यातना और संघर्ष को आज के मनुष्य के द्वन्द्व और विसंगति से अनुप्राणित कर नये भावबोध से संयुक्त करने का प्रयास किया है । §1§

" अपमान एवं निर्वासन की आत्मग्लानी :- शूद्र पुत्र होने की सामाजिक विडम्बना, अर्जुन द्वारा अभद्र व्यवहार से उपजी प्रतिशोध की भावना तथा भीष्म पितामह द्वारा उसे सेनापति न बनाया जाना, आदि ऐसे प्रसंग है, जो आज के व्यक्ति की विसंगति, द्वन्द्व और तनाव को स्वर देते हैं, इन प्रसंगों के द्वारा कर्ण के ओजस्वी और संघर्षशील व्यक्तित्व को सफलता पूर्वक उभारा गया है, जो नाटकीय भंगिमा से युक्त है, यह प्रसंग अपरोक्ष रूप से, आज की सामाजिक व्यवस्था में शूद्रों की नियति और स्थान पर एक तीखा व्यंग्य करता है, माता कुन्ती और कर्ण के संवाद कर्ण की मनोदशा और तेजस्विता, को एक साथ प्रकट करते हैं, यह प्रसंग माँ और पुत्र के द्वन्द्व को भाषा के स्तर पर संवेदनशील बनाता है, कर्ण का अन्तर्द्वन्द्व उसके सामाजिक रूप को भी व्यक्त करता है, जो दान के व्यापक रूप पर आधारित है, कर्ण का व्यक्तित्व और उसके जीवन की सार्थकता उस समय प्रकट होती है, जब कृष्ण की कूटनीति तथा युद्ध नियम का उल्लंघन कर कृष्ण अर्जुन को कर्ण के वध के लिए प्रेरित करते हैं । परन्तु फिर भी कृष्ण को यह कहने के लिए विवश होना पड़ा । एक उदाहरण देखें :-

" युग नहीं खींचे जाते किसी रेखा से ।
युग का निर्माण करते हैं विश्वजयी ।
कर्ण का अन्त ही द्वापर का अन्त है । §2§

---

1. सूर्यपुत्र - आठवें दशक की हिन्दी कविता - सं. - विश्वनाथ प्रसाद तिवारी-पृ02-3
2. - वही - पृ0 - 239

" सूर्य पुत्र " में एक अन्य प्रमुख पात्र कुन्ती है, जिसके माध्यम से काम और रति के उदात्त रूप को प्रस्तुत किया गया है, कुन्ती का "सूर्य" के प्रति आकर्षण एक अनादि कामवृत्ति का सूचक है, जो सूर्य के तेजस्वी मुख मंडल "अग्नि पिन्ड सी प्रज्वलित नयन, शशि तथा वासंती उन्माद घोलने वाले शलाका पुरूष के प्रति आत्म समर्पण करने को उत्सुक हैं । §1§

वैज्ञानिक रूप से नारी के अन्दर एक पुरूष की "छाया" आरिकीटाइप" के रूप में रहती है, जिसे रति या "अमीनस" की संज्ञा दी गई है, और इसी प्रकार पुरूष में जो नारी की "छाया" रहती है, उसे काम या"अमीना" की संज्ञा दी गई है । §2§

कुन्ती के सन्दर्भ में एक सटीक प्रश्न और है, उसका पवित्र कौमार्य जो महान नायकों या वीर पुरूषों को जन्म देती है, जो एक विशेष प्रकार की मिथकीय कल्पना है, संसार के अनेक मिथकों में कौमार्य माता का रूप प्राप्त होता है, जो महा माता का रूपान्तरण माना गया है मरियम, कुन्ती, कैडीशोध, और देव - दासियों की भावनाओं में पवित्र कौमार्य. का रूप प्राप्त होता है, नारी का यह रूप अपने में स्वतंत्र और निरपेक्ष है, वह किसी पुरूष पर आश्रित नहीं है, वह अपने में स्वयं उर्वराशक्ति का प्रतीक है । §3§

" यह पवित्र कौमार्य मातृसत्ता से पितृसत्ता के मध्य की वह कड़ी है, जो नायकों को जन्म देती है । §4§

साठोत्तरी मिथकीय रचनाओं में इस तरह की कई घटनाओं का जिक्र मिलता है, इस कृति में कवि ने कुन्ती, कर्ण, अर्जुन, जैसे पात्रों के माध्यम से वर्तमान समय में हो रही ऐसी घटनाओं की ओर इशारा किया है ।

शम्बूक : जगदीश गुप्त - 1977

"शम्बूक" में जगदीश गुप्त ने मर्यादा - पुरूषोत्तम राम और शूद्रमुनि "शम्बूक" के बीच संवाद के माध्यम से तत्कालीन समाज और व्यवस्था को समकालीन सन्दर्भों में व्यवहृत करते हुए प्रस्तुत करते हैं । आज के राजनैतिक, सामाजिक, परिप्रेक्ष्य में

---

1. सूर्यपुत्र - जगदीश चतुर्वेदी - पृ0 - 2-3
2. मॉडर्न साइकोलॉजी - कावस - पृ0 - 144
3. वोमन मिस्ट्री - हार्डिंग - पृ0 - 35
4. दि आरिजिन एन्ड हिस्ट्री ऑफ कान्शेसनेस - पृ0 - 93

व्यवस्था का उच्च वर्ग के लिए सुरक्षित व्यवहार जिससंकीर्ण और स्वार्थपरक मनोवृत्ति को उजागर करता है, कवि ने शम्बूक के माध्यम से अपनी मिथकीय सीमाओं में मानव के द्वन्द्व को व्यक्त किया है, प्रकृत्या धर्म सभी के लिए एक है, फिर चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो । सम्मान और अपमान में भी बराबर की साझेदारी होती है, फिर भी अधिकांश आज धर्म के नाम मनुष्य - मनुष्य के खून से होली खेल रहा है, कवि ने इस काव्य में ऐसे कुछ सटीक प्रश्नों को उठाया है । एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" वर्ण से होगा नहीं अब त्राण / कर्म से ही मनुज का कल्याण /
जन्म से निश्चित न होगा वर्ण / वर्ग तक सीमित न होगा स्वर्ण /
कर्म से ही श्रेष्ठता अधिकार / कर्म सब के लिए सम आधार ।" ﴾1﴿

कवि जगदीश गुप्त ने शम्बूक की भूमिका में कहते हैं कि निराला ने " तुलसीदास " लिखकर जिस प्रकार उनके व्यक्तित्व को विद्रोहात्मकता के द्वारा प्रणम्य बनाया वह मुझे अस्वाभाविक या अविश्वसनीय नहीं लगता है, जो विद्रोह किसी आस्था की धरती से नहीं उठता वह हवा में गुबार की तरह निरर्थक होकर खो जाता है, "शम्बूक" का विद्रोही स्वभाव उन गहरे मानव - मूल्यों की उपज है, जिनके आधार पर नयी कविता के आन्दोलन-काल में नये मनुष्य की परिभाषा निर्मित हुई थी ।

प्रस्तुत काव्य में कवि ने शम्बूक को "हरिजन" की अपेक्षा "भूमिपुत्र" के रूप में प्रस्तुत किया है, कवि ने आधुनिक विचारधारा को ध्यान में रखकर नयी अर्थवत्ता देने का प्रयास किया है, भक्ति - आंदोलन की देन के रूप में "हरिजन" शब्द अच्छे अर्थ का द्योतक होते हुए भी मूलतः मध्यकालीन मनोवृत्ति का ही परिचय देता है, हरि - भक्त रूप में मनुष्य की महत्ता एक बात में है, और मनुष्य रूप में उसकी गरिमा की स्वीकृति दूसरी बात वैसे शम्बूक ही नहीं सारे मनुष्य भूमि - पुत्र कहला कर नयी सार्थकता पाने के अधिकारी हैं, इस काव्य में यह भाव कई जगह पर व्यक्त हुआ है - एक उदाहरण देखें :-

1. " शूद्र हूँ मैं / मानव - समाज में / मेरा अस्तित्व बहुत अल्प है /
फिर भी / जानें क्यों मेरे मन में / युग-युग से परिभाषित /

---

1. शम्बूक - डॉ० जगदीश गुप्त - पृ० - 62

व्यक्ति के चरित्र को / मानव भविष्य को / नये संदर्भों में /
जानने – समझने का / उपजा संकल्प है । " ॥1॥

2. " वर्षों तक/ कितना सोचा / कितना समझाया / अपने को /
फिर भी कब भूल सका/ उल्टी आँखों देखे / समता के सपने को।" ॥2॥

3. " हैं उगी सब ओर / कैसे तोड़ दूँ / शाखें / हुई मुझ में लीन /
कैसे फोड़ दूँ आँखें / " ॥3॥

प्रस्तुत काव्य की कथा "पदमपुराण" के सृष्टि-खन्ड और उत्तरखन्ड, "महा भारत" के शांतिपर्व ॥अध्याय- 149॥ रघुवंश के 15वें सर्ग, "उत्तर रामचरित" के द्वितीय अंक तथा आनन्द रामायण" के भी अनेक अध्यायों में समाहित मिलती है, नयी पीढ़ी रूढ़ि – ग्रस्त चेतना से मुक्त होना चाहती है, और इसके साथ ही वह मानव – मूल्य के रूप में स्वतंत्र होना चाहता है, समाज को समस्त मानवता के हित में बदलना चाहता हैं, ऐसी अनेक समस्याओं का समाधान इस कृति में हमें देखने को मिलता है ।

आत्मदान : बलदेव वंशी

इस कृति में बलदेव वंशी ने "आत्मदान" के द्वारा अहिल्या प्रसंग को उठाय है, अहिल्या के आत्मकथ्य को प्रस्तुत करते हुए उसमें रागात्मक अनुभवों को तथा मधुर एवं तीखे स्वरों को स्थापित किया है, कवि ने अहिल्या को बुद्धि का प्रतीक माना है, जिसे समाज के व्यवस्थापक रूपी गौतम ने आश्रम में बन्दी बना लिया है, अहिल्या वैचारिक स्तर पर संघर्ष को अभिव्यक्त करती है, उसे शारीरिक सम्पर्क देह और मन का बिखराव नहीं, किन्तु आत्म – साक्षात्कार सा लगता है, उसे पश्चाताप भी नहीं होता । वह इन्द्र के साथ सम्पर्क को पाप नहीं मानती, परन्तु एक साहसी महिला की भाँति व्यक्ति द्वारा अपने द्वारा किया गया सर्वोच्च न्याय मानती है, वह मानती है, कि अपनी रूचि का सत्कार ही आत्माभिव्यक्ति है, और इसके लिए वह हर प्रकार का तिरस्कार सहने के लिए प्रस्तुत हो जाती है, कवि अहिल्या के माध्यम से पुरूष-वृत्ति को चुनौती देती है, एक उद्रण द्रष्टव्य है:-

1. शम्बूक – डॉ0 जगदीश गुप्त – पृ0 – 83
2. – वही – पृ0 – 84
3. –वही – पृ0 – 84

" पुरूष – शासित यह जग है एकांगी / तुम दोषी और तुम ही न्यायकारी हो / तुम ही रक्षक तुम ही व्यभिचारी हो ।" §1§

कवि बलदेव वंशी ने न केवल अहिल्या ही को किन्तु संसार की सम्पूर्ण नारी जाति की दशा और उसकी व्यथा को प्रकट करते हुए, आज की जिम्मेदार व्यवस्था को दोषी बताया है, और इस प्रकार आज के युग की ज्वलंत समस्याओं को चुनौती की तरह लेते हुए, कवि बलदेव वंशी" ने "आत्मदान" में अहिल्या का नया संस्कार किया है, कवि ने अपनी मिथकीय सीमाओं में समेटते हुए अहिल्या के माध्यम से आधुनिक नारी सन्दर्भों को विविध आयाम देते हुए प्रस्तुत किया है । इस लम्बी कविता क्रम में विचारों का द्वन्द्व, अहिल्या, इन्द्र और गौतम के त्रिकोण की सापेक्षता को विकसित किया, इस रचना में अहिल्या के आत्म संघर्ष को अनेक प्रश्नों के माध्यम से जूझता हुआ बताया गया है, और साथ ही उसे मर्यादावाली नारी की व्यथा को भी उजागर किया गया है, तथा गौतम को पलायनवादी बताया गया है, इस काव्य में अहिल्या को बुद्धि का प्रतीक माना गया है, जो कि समाज व्यवस्थापक गौतम के आश्रम में बन्दी है, अहिल्या का यह रूप पूरी कविता के अनुस्यूत है, इसके साथ गौतम तप या योग और इन्द्र भोग व्यक्तिवादिता के प्रतिरूप है, कवि ने इन तीनों पात्रों को प्रतीकात्मक व्यक्तित्व प्रदान किया है, जो किसी न किसी रूप में "वैचारिक बंध से जुड़े हुए हैं । "

" इस कृति का अन्य महत्वपूर्ण पक्ष "आत्मदान" का स्वरूप है, आत्मदान एक प्रकार से अहिल्या का "आत्मदान" है, जिसे एक प्रक्रिया के रूप में दिखाया गया है, आत्मदान से पूर्व आत्मबोध आवश्यक है, क्यों कि अब तक आत्मबोध नहीं होगा, तब तक "दान" का कोई अर्थ नहीं है, रचनाकारी की सृजन प्रक्रिया भी इसी " आत्मदान "की क्रमिक प्रक्रिया है । §2§

इसके अतिरिक्त इस रचना में ऐसे वाक्य है जो दूर – दूर तक बिखरे हुए हैं, जो आज के वैचारिक द्वन्द्व को व्यंजित करते हैं, जैसे यांत्रिकता से परे सत्य, प्रश्नों के विषैले दंश । §3§

---

1. आत्मदान – बलदेव वंशी – पृ0 – 21
2. आठवें दशक की हिन्दी कविता – सम्पादक – विश्वनाथ प्रसाद तिवारी–पृ0–243
3. आत्मदान – बलदेव वंशी – पृ0 – 6

" जीवन एक यात्रा अंधकार में टटोलते हुए । " §1§

" जीवन की सांस है कि खिंचती ही चली जाती / हर शिला के नीचे यहा दबा है एक धमाका / तथा काल के प्रवाह में वही शेष रह जाता है / जो सापेक्ष पुष्पमय सृष्टि का भाव - फूल है ।" §2§

सांस्कृतिक चूहे की कतरन :- कवि भारत भूषण अग्रवाल

" भारत भूषण अग्रवाल " साठोत्तर कविता के कवि माने जाते हैं, कवि ने मिथक को किसी कथा के फलक के साथ ग्रहण नहीं किया, बल्कि अपने कथ्य को संकेतों के मिथकीय ढाँचे में व्यक्त किया, उन्होंने मिथक की रचनात्मकता को सही ढ़ग से आधुनिक जीवन सन्दर्भ के साथ पहचानने की कोशिश की । एक उद्दरण दृष्टव्य है ।

" कलियुग का कमजोर प्राणी मैं
अमृत खोज नहीं पाया
सिगरेट पीता रहा । §3§

भारत भूषण अग्रवाल" का यह कविता अंश नये युग की उन त्रासद विडम्बनाओं की ओर संकेत करती है, कि आज का व्यक्ति अपने जीवन में किस प्रकार सार्थकता के एहसास से घिरा हुआ है, आधुनिक युग के मिथक महानगरीय जीवन के सही चित्र प्रस्तुत करते हैं, इन कविताओं में आज का जीवन कितना लाचार है, नयी कविता में मध्यमवर्ग की संवेदनाओं का सही अर्थ प्रस्तुत करने के लिए मिथकीय संकेतों का अधिक प्रयोग हुआ है । कलियुग का मनुष्य आत्महंता स्वर में अंधों का गीत सुनाता है, एक उद्दरण दृष्टव्य है :-

" मैं अंधी गली हूँ / पथहीन छल हूँ मैं पथ का / मुझे पार कर जाना - बिल्कुल असम्भव है / मैं चक्रव्यूह का अभिनव संस्करण हूँ / तुम मुझमें - प्रवेश करो आधुनिक अभिमन्युओं/ और गाओ, सिर मारो मेरी दीवारों- से / मैं ठोस अन्त हूँ, हर गति की कामना का / मैं अंधी गली हूँ।"§4§

" भारत भूषण अग्रवाल " ने सामाजिक व्यंग्य उभारने में भी सबसे अधिक रचनात्मक शक्ति प्रदर्शित की, एक उद्दरण दृष्टव्य है :-

" थाने के सामने धरती पर पड़ी हुई लाश के पास बैठकर /
आँसू टपकाती थी गूँगी मोहना की बहू ।" §5§

---

1. आठवें दशक की हिन्दी कविता - स. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी-पृ0-244
2. -वही- पृ0- 244
3. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ0 शम्भुनाथ चतुर्वेदी- पृ0- 324
4. -वही- पृ0 - 324§5§ - वही - पृ0 - 325

राजनैतिक दमन का एक बहुत ही सपाट चित्र प्रस्तुत किया है, इसके साथ ही इसमें व्यवस्था की क्रूरता और इसमें पिसी औरत की वेदना समाज के समूचे अंत-र्विरोधों को नंगा कर देती है, मोहना की बहू गूंगी है, वह बोल नहीं पाती, क्यों कि उसका गूंगापन शारीरिक लाचारी से अधिक एक आर्थिक त्रासदी है, राजनैतिक दमन से जनता की आवाज छीन ली है - क्रूर व्यवस्था का यह साधारण चित्र एक व्यापक अर्थ इस लिए संप्रेषित करता है कि "गूंगी मोहना की बहू" के संकेत का ढांचा सामान्य नहीं मिथकीय है ।

" भारत भूषण अग्रवाल " को आधुनिक जीवन के बदलते मुहावरों की उन्हे अच्छी पहचान भी है, एक उदाहरण देखें :-

" हर रोज एक ताजा महल / मरम्मत के लिए ठेले पर जाता है /
हर रोज एक झंडा / मुझे सड़क पर कुचला मिलता है /
हर रोज एक आदर्श अस्पताल में दाखिल होता है /
पर रोज एक सपनें को / मैं भरती के दफ्तरों पर खड़ा देखता हूँ /
हर रोज एक नारा / जुलूस में चलता है / और रेस्तरां में घुस जाता है।" §1§

प्रस्तुत कविता में ताजमहल न ताजमहल है, न अस्पताल - अस्पताल । जुलूस का नारा भी रेस्तरां में नहीं घुसता, यह राजनीति के नाटकीय चरित्र का पर्दाफाश करता है, यह वर्तमान स्थिति के प्रति एक निराशाका चित्र भी है, जो जनता के मन पर छाता जा रहा है, संकेतों का मिथकीय ढ़ांचा बड़ी सफलता के साथ रोजमर्रा की घटनाओं को व्यापक अर्थ से जोड़ देता है, वह व्यर्थता बोध को राजनैतिक संस्कृति के पतन के मध्य उजागर करता है, आम चुनाव प्रचार किस तरह से बदलते जा रहे हैं इसकी अभिव्यक्ति कवि ने निम्न प्रकार से किया है, एक उदाहरण देखें :-

" दंत कथाओं के दैत्य की तरह / सबने अपनी-अपनी आत्माएँ /
पिंजड़े में बंद करके / कुआँ में डाल दी हैं / और सब हल्के -
महसूस करते हैं / अनगिनत हाथ /बैलेट बाक्स से /
तक्षक से निकल कर इन्द्रासन से लिपट जाते हैं । " §2§

भारत भूषण ने " सांस्कृतिक चूहे की कतरन " कविता में कवि ने तीसरे विकल्प की तलाश करते हैं वे कहते हैं, कि " चूहा बिना पसे किसी छड़ी के सहारे रोटी निकालने की तैयारी करता है, कवि के लिए वह छड़ी जादू की छड़ी जैसे लगती है,

---

1. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ0 शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ0 - 325
2. - वही - पृ0 - 326

कवि ने अपनी कविताओं में गहरे अनुभवी जन की भूमिका न निभाकर टिप्पणीकार की भूमिका निभायी है, कवि ने अपने इस काव्य में राजनीतिक पुरूषों को भी मिथकीय रूप देने का प्रयास किया है, एक उद्धरण देखें :-

" राजनीति पार्टियाँ / कनाट प्लेस के एक-एक खंभे को बजाकर देख रही है/ नरसिंह किसमें से प्रगट होंगे / और प्रहलाद स्वेतलाना का जाप कर - रहा है / एक जंग खाई कील निरंतर अंदर चुभती रहती है / जिसका नाम है - अंतःकरण गाँधी । " ﴾1﴿

इस प्रकार साठोत्तरी मिथकीय कविता वर्तमान सन्दर्भ के साथ आज की सामाजिक भूमिका को समझाने और उसे क्रियाशील रूप देने का प्रयास कर रही है ।

﴾9﴿ " जब अस्मिता ने अपनी हत्या कर दी थी " - वीरेन्द्र कुमार जैन

वीरेन्द्र कुमार जैन की यह एक लम्बी कविता है, इस खन्ड काव्य में मिथक का प्रयोग आनुषंगिक रूप में भी मिलता है, इसमें कथ्य को कहीं से लिया गया है, कुछ स्पष्ट नहीं होता, किन्तु खन्ड-खन्ड में स्थितियों का सही चित्रण किया गया है, बीच - बीच में आये हुए कुछ पौराणिक सन्दर्भ से काव्य में नये प्रसंगों को जोड़ते है, वैसे काव्य में अस्मिता के प्रश्न को लेकर उठाया गया, "सत्यवान" और " सावित्री " का प्रसंग जो नारी जाति की अंतःवेदना को स्त्री पुरूष के परस्पर एक दूसरे के पूरक रूप को एक स्वप्न भाव के रूप में उद्धृत किया है, कवि वीरेन्द्र कुमार जैन' ने इस काव्य में भीतर बाहर की अन्तर्यात्रा में स्वप्न और यथार्थ को एक वैचारिक धरातल पर रेखांकित करने का प्रयास किया है ।

﴾10﴿ " नमो बुद्धाय " - कवि प्रभाकर माचवे

महात्मा बुद्ध को सम्बोधित करके बौद्ध धर्म में आये विकारों को अभिव्यक्त किया है, बौद्ध धर्म प्रधान देश श्रीलंका में अहिंसा की जगह हिंसा की प्रवृत्ति दिन - प्रति दिन जोर पकड़ रही है, इस काव्य में "कवि माचवे जी ने "बन्दारनायके" पर चलाई गई गोली की घटना तथा बौद्ध धर्म के अहिंसा के उपदेश पर प्रश्न चिन्ह एवं बौद्ध भिक्षुओं का विलासपूर्ण जीवन, बौद्ध मंदिरों में हो रहे "पापाचार" को देखकर कवि ने उसका वर्णन किया है, एक उदाहरण देखें -

---

1. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ० - 327

" देखा यह विहार यह मंदिर - म्हावत / भन्ते / नहीं समझ में आधा वह पथ / जिसने गोली मारी थी बन्दारनायके को / वह भी भिक्खु-या सुगत । ≬1≬

आधुनिक बौद्ध भी इसी माया जाल में फंसे है, कवि व्यंग्य करता है, कि आज के बुद्ध सुख - सुविधा के आकांक्षी परन्तु कर्मविहीन मठाधीश लोगों के उपास्य बनकर रह गये हैं, संसार के सफल पदार्थों की इच्छा रखने वाले कर्म विहीन लोगों के लिए बुद्ध के उपदेशों का कोई अर्थ नहीं रह गया है, एक उदृरण देखिए :-

" मैं इन्द्रिय - सुख लोलुप कर्महीन / चाहता नित्य से सकल - पदार्थ ।।/ तुम सोये हो अनुराधा पथ में / मेरे अमिताभ तथागत ।" ≬2≬

कवि ने उन आदर्शों की बात को स्पष्ट किया है, जो कर्म में नहीं उतर पा रहे, आदर्श और आचरण में आई गिरावट के कारण प्राचीन मूल्यों का हास्य हुआ है ।

||. बुद्ध और नाच घर - कवि हरिवंशराय बच्चन

प्रस्तुत कविता में कवि हरिवंशराय बच्चन ने महात्मा बुद्ध के जीवन की प्रमुख घटनाओं को उद्घाटित किया है, कवि ने गौतमबुद्ध की साधना तथा उपदेशों को वर्तमान युग में निरर्थक बताया है, क्यों कि आज का व्यक्ति उनके उपदेशों और आदर्शों के विपरीत कार्य कर रहा है, कवि ने इस बात पर अधिक जोर दिया है, कि जिसके लिए बुद्ध ने अपने सुख - सुविधाओं एवं घरबार, बच्चे पत्नी को छोड़कर सन्यास धारण किया, था, और तप में लीन हो गये थे, उन्ही चीजों का आज आचरण में लाया जा रहा है । साधना की बजाय लोग भोग - विलास की तरफ अधिक लालायित है ।

बुद्ध का मानना था कि ईश्वरी साधना में नारी बाधक हो सकती है, यही कारण था, कि उन्होंने अपने संघ में स्त्रियों को दीक्षित करने के लिए मना करते थे, किन्तु आज वही नारी बौद्ध धर्म में न केवल दीक्षित हो रही है, बल्कि भिक्षुओं की विलासिता का साधन बन चुकी है । इसके कारण धर्म में सकीर्णता तथा विकार उत्पन्न हो गया है । गौतम बुद्ध ने मूर्ति पूजा का विरोध किया था, वर्तमान समय में उन्ही की मूर्ति की पूजा हो रही है, बुद्ध का मानना था, कि भगवान कुछ नहीं करता, मनुष्य ही सब कुछ करता है, किन्तु आज उनके अनुयायी स्वयं उन्हें

---

1. नयी कविता में मिथक - डॉ० राजकुमार - पृ० - 117

भगवान मानते हैं, उन्होंने अहिंसा का पाठ पढ़ाया था, किन्तु आज उन्ही की मूर्ति को शेर की खाल पहना कर लोग अपने घरों में तथा ड्राइंग रूम सजा रहे हैं, सम्पूर्ण कविता में कवि ने गौतम बुद्ध के उन तमाम बताये हुए मार्गों का उल्टा हो रहा है, जो वास्तव में नहीं होना चाहिए, आधुनिक सन्दर्भ में बुद्ध की सारी साधना, बुद्ध की अस्मिता तक निरर्थक प्रतीत होती है ।

" बुद्ध और नाचकर " कविता का कवि आदर्शवादिता तथा धर्म साधना के आचरण में आ गई विसंगति के कारण बुद्ध और बुद्ध के आदर्श एवं वे तमाम प्राचीन ग्रन्थों में दी गई बातें निरर्थक लगती है, वर्तमान युग में आयी इस गिरावट के लिए मनुष्य जिम्मेदार है, कवि ने इस बात को सिद्ध करने की कोशिश की है, कि आज के युग में आदर्श का कोई महत्त्व नहीं है ।

12. " उर्वशी ने कहा " - डॉ0 देवराज

प्रणय के क्षेत्र में पैदा होने वाली ऊब का वर्णन"उर्वशी ने कहा" संकलन में संकलित इसी नाम की कविता में किया है, प्रेम करने वाली नारी के मन में अनछुई परतों को उजागर करने के साथ - साथ कवि ने सामन्ती चेतना वाले पुरूषों द्वारा शोषित नारी का प्रणयगत अब के कारणों का वर्णन भी किया है, देवताओं के प्रति उर्वशी की ऊब अकारण नहीं है, उनके वासनातत्त हवसमय उपभोगवादी प्रेम से वह ऊब गई है, उसकी ऊब के कारण हैं सुरो के द्वेष, भय, क्रोध, ईर्ष्यापूर्ण, कूटबुद्धि, कायरता तथा छलकपट पूर्व वृत्तियाँ, आधुनिक नारी का प्रतिनिधित्व करने वाली उर्वशी ने अनुभव किया है कि सुर (सामन्ती चेतना वाले विलासी धनवान पुरूष) नारी के प्रणय भाव की बारीकियों, कोमलताओं तथा भाव - भंगिमाओं का सम्मान नहीं करते, वे अपनी वासना के ज्वार को ठन्डा करते हैं । उनका प्रेम भी एक निष्ठ नहीं जब कि उर्वशी को तो एक निष्ठ प्रेमी की आकांक्षा है, जो ईर्ष्या - द्वेष से रहित, मित्र, सखा तथा हमदर्द हो और जो अनुभूति प्रवण हो - एक उदाहरण देखें।

" इस सुरों के लोक से इन सुरों से / मैं हूँ बहुत ऊबी / कूट कटुता दुष्टता / जिनकी बड़ी खूबी / शक्ति - कांक्षी किन्तु कायर / दानवों के सामने से/ भागते ये सतत / गर्व, ईर्ष्या, क्रोध, भय, मात्सर्य इनके/ बन्धु सहचर - मित्र हैं अनवरत । (1)

1. उर्वशी ने कहा - डॉ0 देवराज - पृ0 - 39

ऐसे पुरूष जो कि क्रूर - कामुक, कायर, षड्यन्त्रकारी प्रवृत्ति के हों, और उनमें कठिन समय में, संघर्ष करने की क्षमता न हो, ऐसे पुरूषों देवताओं के सानिध्य में रहकर उर्वशी जान गई है, कि वे नारी से प्रेम नहीं करते बल्कि उसे उपभोग्य की वस्तु ही समझते हैं नारी के प्रति उनके मन में कोई सम्मान नहीं है, कवि का कथन है :-

" वासना के कीट, मोहक प्रणय की बारीकियों से / बेखबर,अनजान/
बेहया कब प्रेयसी के / सूक्ष्म - मृदु संकोच, शुचि अनुराग को /
ये दे सके सम्मान । ॥1॥

13. " एक पुरूष और " - डॉ0 विनय - 1974

इस काव्य का प्रकाशन उन दिनों हुआ, जब समूचा राष्ट्र एक आन्तरिक संकट के दौर से गुजर रहा था, और व्यक्ति पाप - पुण्य, वैध, अवैध और नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्नों के बीच थपेड़े खा रहा था, और अपनी सार्थकता को ढूँढ रहा था, और इसके साथ ही कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहा था, जिसे आज की भाषा में आतंकित ॥आतंकवाद॥ कह सकते हैं, यह संघर्ष-भरी भावना प्रत्येक युग में उतनी ही तेज होती रही है, जितनी इस युग में इसीलिए शायद कवि ने विश्वमित्र के माध्यम से आज के जूझते हुए व्यक्तित्व को प्रस्तुत किया है, जो इसका प्रमाणिक दस्तावेज है, और एक सशक्त मिथकाभि व्यक्ति का माध्यम और सहज मानवीय प्रयास को प्रेरणा देती है ।

आज व्यक्ति को जिस प्रकार शोषण और षड्यन्त्र का शिकार बनाया जा रहा है, और उसे राजनीति के दुष्चक्रों का शिकंजा उसके चारों तरफ फैलाया जा रहा है, इसके बहुत ही दुष्परिणाम हमें देखने को मिलेंगे, जीवन का मकसद मात्र नारेबाजी बनकर रह गया है, व्यक्ति ऐसे वातावरण से मुक्ति प्राप्त करने के लिए जिस भगीरथ प्रयत्न और संकल्प की अपेक्षा है, वह विश्वमित्र सरीखे प्रबल और आत्मविश्वासी पात्र के माध्यम से ही संभव है, इसलिए कवि ने विश्वामित्र को संघर्ष का प्रतीक पात्र बनाकर तथा मेनका को यंत्रणायुक्त नारी के रूप में अभि - व्यक्ति देते हुए विनय ने यौन सम्बन्धों को मानवीय संवेदना के स्तर पर रखने का प्रयास किया है, जो नयी कविता की अपनी निजी पहचान को स्पष्ट करती है,

---

1. उर्वशी ने कहा - डॉ0 देवराज - पृ0 - 39

एकउदूरण दृष्टव्य है :-

" कितनी अजीब बात है, मेनका / कि तपस्यारत मैं / अन्तरोन्मुख मैं / समाधिस्थ मैं / और नींद देवताओं की उड़ रही थी / क्या व्यक्ति- केवल अपनी पहचान के लिए / करवट नहीं बदल सकता । §1§

" एक पुरूष और " एक ऐसे वैचारिक धरातल पर स्थित है, जिसमें आज के मनुष्य की द्विधा और उसकी आधुनिकता को चित्रित किया गया है । इस काव्य में "विश्वामित्र" और "मेनका" के माध्यम से काम सम्बन्धों की जिस समस्या को उठाया गया है, इसके कुछ पक्षों को "दिनकर" ने अपनी काव्य - कृति "उर्वशी" में शोभावान भाषा के द्वारा उठाया है । "एक पुरूष और" की मेनका जीवन की सार्थकता से ज्यादा नजदीक है, जब कि कवि का मन विश्वामित्र के साथ ही रहता है, मिथक - चेतना में नयी प्रासंगिकता का अभाव पाया जाता है, इस सम्बन्ध में एक भ्रान्ति यह भी है, कि उपभोग और जीवन भोग में आम तौर पर कवि अन्तर नहीं कर पाते, अर्ध्व मुखी चेतना की जगह, आज बहुत जरूरी है, कि जनोन्मुखी चेतना को विकसित किया जाय, हाँ कवि ने शिल्प और संवेदना के स्तर पर सुन्दर काम किया है, किन्तु निजी रोमानीपन कविता की दिवारों को लांघ नहीं पाती, कवि में सामाजिक चेतना गायब है, ऐसी बात नहीं है, इसकी एक अत्यन्त सूक्ष्म धारा साफ झलकती है, जो पगडन्डी से होती हुई "दूसरा राग " में एक व्यापक जमीन प्राप्त करती है, आगे चलकर "पुनर्वास का दन्ड " में नव रोमानी सामाजिक बोध का कवि मिथक का एक नया कलात्मक उदाहरण प्रस्तुत करता है, "एक पुरूष और " की निम्न पंक्तियाँ दृष्टव्य है :-

" शायद यह समाप्ति नहीं है / एक प्रारम्भ है / अंधेरे में घिरने का -
अर्थ नहीं होता / समाप्त होना / और समाप्त होने पर भी /
गुम होता है / केवल व्यक्ति युग नहीं..... प्रश्न नहीं......
न समस्याएँ / और न जीवन का अर्थ । " §2§

प्रस्तुत काव्य में वैचारिकता का एक क्रमबद्ध रूप प्राप्त होता है, इविवृत्त केवल एक प्रसंग मात्र है, जिसके माध्यम से आधुनिक मानव और इतिहास की द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया को रेखांकित किया गया है । "महाभारत" के एक प्रसंग में

---

1. समकालीन हिन्दी कविता - संवाद - सम्पादक - डॉ0 विनय - पृ0- 49
2. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ0 शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ0 - 358

" मेनका " और "विश्वामित्र" के प्रणय मिथक को कवि ने आज के संघर्षशील जीवन, व्यक्ति के अस्तित्त्व की सार्थकता और विडम्बना तथा मूल्यों से सीधे टकराव की दशा को एक सटीक सन्दर्भ देने का सफल प्रयास किया है " विनय का कथन है, कि इस समय में मानव के सामने भी अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, और व्यक्तिगत प्रश्न थे जिस तरह आज के मानव के सामने है ।" (1)

मिथकीय कल्पना में सृष्टि की उत्पत्ति एक वृत्त गोलक या सर्पाकार कुन्डल से माना गया है, जो आदि सृष्टि तत्त्व है, जिसके द्वारा क्रमशः युग्मों और विलोगों की रचना हुई, यही आदि तत्त्व द्विलिंगी भी था, जिसने स्त्री पुरूष को जन्म दिया । इस गोलक को "यूरोबोरस" की संज्ञा मनोवैज्ञानिक और दार्शनिकों ने दी है । (2)

इस आदि गोलक को अनेक नामों के द्वारा विभिन्न मिथकों में पुकारा गया, जैसे ब्रह्मा, जेहोवा, शून्य, गॉड, आदि समस्त सृष्टि इन्ही विलोमों के द्वारा विकसित हुई, इसे ही कदाचित "फ्रेडहॉयल" ने "पृष्ठभूमि" पदार्थ" की संज्ञा दी जो सदा से उपस्थित रहा है, और रहेगा, वह कभी समाप्त नहीं होगा । (3)

कवि ने इस कृति का आरम्भ इसी मिथकीय कल्पना के द्वारा किया है, जो "द्वन्द्व" को आधार प्रदान करती है, एक उद्धरण द्रष्टव्य है :-

" एक सर्पाकार कुन्डल / धीरे से खुल रहा था, हवाओं में /
और एक आरम्भ / द्वन्द्व को शक्ल देता हुआ /
विभाजित हो रहा था / अपने खन्ड में । (4)

इस काव्य में कवि ने "मेनका" और "विश्वमित्र" का मिलन केवल भोग और वासना नहीं है, और न ही इसमें मेनका कोई "अप्सरा" ही है, वह तो एक पूर्ण स्त्री है, जो कि नयी पीढ़ी को जन्म देने वाली नैतिकता है, इस काव्य में ये दोनों पात्र केवल उदात्तता के लिए है, और यही कारण है, कि कवि ने मेनका के मातृत्व में इसी "उदात्त" के दर्शन होते है । "एक पुरूष और" काव्य में कई और बातें स्पष्ट रूप से सामने आती हैं, जिसमें जनवादी चेतना का संघर्ष और इतिहास का द्वन्द्व, आत्मतत्व का सम्बन्ध, द्वन्द्वात्मक प्रक्रिया, मानव व्यक्तित्व, तपस्या और

---

1. एक पुरूष और - डॉ0 विनय - की भूमिका से उद्धृत
2. दि ऑरिजन एन्ड हिस्ट्री ऑफ कान्शसनेस न्यूमैन
3. दि नेचर ऑफ यूनीवर्स - फ्रेड हायल - पृ0 - 32
4. " एक पुरूष और " - डॉ0 विनय - पृ0 - 13

साधना का व्यापक सन्दर्भ भागलावादी प्रवृत्ति तथा आधुनिक विद्रोह की तरफ संकेत तथा इसके अलावा इस काव्य में पुरूष के अन्दर छिपे "अन्य पुरूष के महत्त्व को स्पष्ट किया गया है, जो कि आज के संघर्षशील जीवन और वैचारिक द्वन्द्व को रेखांकित करता है, इससे भी स्पष्ट संकेत उस समय प्राप्त होता है, जब विश्वामित्र के "भाल" पर अंकित "जनइच्छा" और हृदय में पल रही क्रान्ति जैसे वाक्यों से कवि जनवादी चेतना की ओर संकेत करता है । विश्वामित्र में भी एक नयी चेतना है, इसी प्रकार मेनका के रूप में भी रूपान्तरण प्राप्त होता है, वह केवल इन्द्रलोक की भोग्या नहीं है, बल्कि वह विश्वामित्र के संसर्ग से अपने को एक नया अर्थ देना चाहती है, एक उदाहरण देखें :-

" मुझे भी मिलनी चाहिए अर्थवत्ता/ मेरे शरीर की, मेरे अस्तित्व की /
मेरा पाप: पुण्य: विवशता/ जो कुछ भी है / तुम्हे समर्पित है,महामुनि/
सिर्फ उसे एक अर्थ दो । " ॥1॥

इसके साथ ही कवि विनय ने "एक पुरूष और" में आई असंगति के कारण व्यर्थ हो रहे मूल्यों की ओर भी संकेत किया है, उनका विश्वामित्र लोगों की अति-व्यक्तिवादिता को ही मूल्यों का ध्वंसक मानता है, और व्यंग्य करता है, एक उद्दरण देखें :-

" और जानते हुए कि समपर्ण/ व्यर्थ नहीं होता / अपने से बड़े के आगे /
होते रहे उद्धत / छिपकर करते रहे वार / अपमानित करते रहे /
विश्वसनीय सत्कार को / आहत दर्प से...।/ नहीं रह गया है शेष /
विश्वास, अपनत्व / यज्ञों की लपटें हो गई हैं पवित्र / राहत की -
साँस लेते हैं लोग / हन्ता पुत्र पाने की लालसा से / और सिर उठाकर
चलता है, कोई इन्द्र / किंदित के गर्भस्थ पुत्र के/ सात टुकड़े कर दे ।॥2॥

14. सूरज एक सलीब - शैलेश जैदी

शैलेश जैदी की यह एक लम्बी कविता है, इस खन्ड काव्य में भी कवि ने कहीं - कहीं मिथक का प्रयोग किया है, उनके कहने का अर्थ है कि प्राकृतिक उपादानों का दैवीय रूप मानवीकृत होकर उनके काव्य में अवतरित हुआ है, जो यथार्थ के धरातल पर देश को एक पात्र के रूप में प्रस्तुत करते हुए, जिन स्थितियों का वर्णन करते है, वह सम सामयिक परिवेश में मानवीय संवेदना के स्तर पर अभिव्यक्त हुआ है, यह उन

---

1. एक पुरूष और - डॉ0 विनय - पृ0 - 13 - 14
2. - वही - पृ0 - 15

दिनों की बात है, जब "इंदिरा गाँधी" के विरोध में पूरे देश में आन्दोलन चल रहा था, इन्हीं दिनों "जय प्रकाश नारायण" की क्रान्ति ने कांग्रेस को विवश करने लगी, इन्हीं दिनों आपातकाल की घोषणा ने सारे देश में तहलका मचा दिया था, "जय प्रकाश नारायण" की इस क्रान्ति का पूरा व्यौरा नहीं दिया जा सकता, किन्तु यह तलाश अभी समाप्त नहीं हुई है, वह तो - "सूरज और सलीब की दूरी को निराशा भरी भीगीं आँखों से देखा जा सकता है, यह काव्य आज की राजनैतिक भाव धारा को मिथक के सार्थक प्रयोग द्वारा एक सटीक उत्तर देती है ।

15. चक्रव्यूह - जगमोहन चोपड़ा

इस कविता में अभिमन्यु के मिथक के द्वारा समकालीन सन्दर्भ की परिस्थितिओं में घिरा हुआ व्यक्ति की मनःस्थिति को अभिव्यक्त किया गया है, कहीं - कहीं पर अपने अमूर्त्त भावों तथा विचारों को अभिव्यक्त करने के लिए मिथकीय प्रतीकों का प्रयोग किया है, और इसके साथ ही कवि ने यह भी बताने का प्रयास किया है, कि आज का युवा वर्ग किस तरह से अपने जीवन के चक्रव्यूह में फँसा है, जिसमें से वह निकल पाने में असमर्थ है, और जीवन रूपी ऐसे चक्रव्यूह में वह अपना जीवन व्यतीत कर रहा है ।

16. कबंध - विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

कबंध नामक कविता में भी ऐसे ही मिथकों का प्रयोग हुआ है, जिसमें व्यक्ति के संघर्षशील जीवन का चित्र प्रस्तुत करती है, इस काव्य में एक व्यक्ति है, जिसका धड़ कट गया है, फिर भी "कबंध" उठ खड़ा हुआ है, और वह व्यक्ति समाज, संस्कृति, से संघर्ष करने के लिए तैयार है, कवि विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का कहना है कि आज के व्यक्ति की नियति में कितना परिवर्तन आ गया है, कवि ने वर्तमान समय में हर एक क्षेत्र में हो रहे परिवर्तन और मनुष्य - मनुष्य के बीच हो रही भेदक रेखा को स्पष्ट करने का प्रयास किया है, एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" मेरा कबंध उठ खड़ा हुआ है / कटे सिर वाले धड़ /
धांय - धांय करने लगे हैं / समय का रंग सुर्ख हो गया है /
अब हम आमने - सामने हैं / यह एक अच्छी शुरूआत है । (1)

---

1. आठवें दशक की हिन्दी कविता - डॉ० विनय - पृ० - 248

17. डॉ0 विष्णु विराट की कवितायें

डॉ0 विष्णु विराट ने अपनी काव्य कृतियों में पौराणिक सन्दर्भों को प्रासंगिकता की सार्थकता प्रदान की है, इनकी कुछ विशिष्ट काव्य कृतियाँ के विवरण दृष्टव्य है ।

एक रण वैचारिणी है शेष

यह काव्य कृति महाभारत के समर्थपात्र कर्ण की मानसिकता के अर्न्तद्वन्द्वों को प्रस्तुत करती है, व्यक्ति की आत्मकेन्द्रित मनोव्यथा का यह एक जीवन्त अध्याय है, जिसमें कवि ने मिथक के अभिनव प्रयोग से अपनी उदात्त वैचारिकी को एक विस्तृत फलक पर काव्यांकित किया है ।

युद्ध का निषेध कवि के चिन्तन का केन्द्र बिन्दु रहा है, कर्ण की वैयक्तिक वर्जनाएँ, आरोपित अवरोधों एवं अभियोगों के प्रति उद्वेलित उसका आत्मद्वन्द्व कविता की प्रमुख पहचान बन कर उभरा है, कहीं - कहीं तो कवि ने बाह्य चित्रांकन और काल्पनिक दृश्य संयोजना से ही कर्ण के आत्मद्वन्द्व को सार्थक बिम्ब प्रदान किए हैं, यथा :-

" इस विजन में / प्रेत जैसा / कर्ण / अपना शव उठाए /
घूमता है । ﴾1﴿

या फिर :-

शौर्य का / कैसा बना उपहास / इन रणवाँकुरों के लोथ /
अब दुर्गन्ध हैं / कर्ण अपनी भुजाओं को सूँघता है । ﴾2﴿

कथा क्रम में महाभारत के अन्य पात्रों के माध्यम से भी कवि ने कुछ प्रासंगिक तथ्य उद्घाटित किए हैं, एक स्थान पर कर्ण कुन्ती को सम्बोधित करते हुए कहता है :-

" और तुम जो बो रही हो / इस धरा पर / ये अनीति - बीज /
ये व्यभिचार के क्षण / स्वार्थ का ये संविधानी चक्र / ये काहुण्य /
लिप्सा / आचरण की भ्रष्ट सृष्टी का हलाहल / और ये षड्यन्त्र का-
दुर्व्यूह / कुन्ती / कल तलक ये नई संसृति में / हरा होकर उगेगा /
पीन्ड़ियों को विरासत होगी तुम्हारी / आचरण-मर्यादा तोड़ेगा तुम्हारा
नाम / तुम इतिहास को / इतना चबाओ मत / कि कल का नया -
सूरज / दृष्टि ही खो दे / तुम्हारी इस कृपा से । ﴾3﴿

1. एक रण वैचारिणी है शेष - डॉ0 विष्णु विराट चतुर्वेदी
2. - वही -
3. = वही -

आत्म घुटन और आरोपित संत्रास से व्यथित हुआ कर्ण एक का पुरुषी आक्रोश जीने के लिए बाह्य हो जाता है यथा :-

" दूर है आयुद्ध क्वचित / वह कर्ण आयुद्ध है स्वयं /
इस युद्ध क्षण में । §1§

कवि प्रासंगिक परिवेश में साम्राज्यशाही और भ्रष्टाचारी शक्तियों को रेखांकित करता हुआ अपनी आशंका व्यक्त करता है :-

" कौन अपने शीत वाणों से / धधकती पीठ ठंडी कर रहा है /
पीड़ियों की आग / क्या यूं ही बुझेगी ? / क्या युवा आक्रोश-
यूं जमता रहेगा ? / भ्रष्ट स्वारथ की / अपावन संधियों में ?
कौन नंगा हो गया / इस महारण में द्रौर्ण का दौर्बल्य ।
अथवा भीष्म की अतिबृद्ध कांक्षा का / अनिर्णय ।??§2§

युद्ध वर्जना की हिमायत करता हुआ कवि आह्वान करता है ।

" रोक दो ये यज्ञ / जिसमें होम होते वीर / यव, धृत, कान्त
जैसे रोक दो ये अग्नि / अपने राष्ट्र का पौरूष्य जिसमें राख -
होता / रोक दो ये युद्ध / जिसमें भस्म होता / स्वत्त्व संसृति
सभ्यता का / रोक दो / दुर्नीति की संयोजना ये रोक दो /
अंधत्व का अभिषेक । × × × × ×
यह महा भारत नहीं /
यह शक्ति सत्ता का कलुष / व्यभिचार - गाथा /
यह प्रवंचित लालसा की / स्वार्थ वृत्रि / यह नराधम / मानती-लिप्सा/
हलाहल । " §3§

सत्ता के शोषण और दमन के प्रतिकार में कर्ण का यह चित्कार कृष्ण के आगे कितना प्रासंगिक अनुभव किया जा सकता है -

" कृष्ण / मेरी पीठ पर ये नागफनियाँ / देह में रोपी हुई /
निर्लज्जता है / किस तरह / वन - वीहणों का / चलन है यह /
किस तरह हम ग्रास हैं / लिप्सा / क्षुधा के / हम पराई आग पर/
बस रोटियां हैं / आग से उतरे / किसी के गर्भ में गलेंगे /
ये ही नियति है । " §4§

---

1. एक रण वैचारिणी है शेष - डॉ० विष्णु विराट चतुर्वेदी
2. - वही -
3. - वही -
4. - वही -

सम्पूर्ण कविता मिथक प्रयोग का अप्रतिम उदाहरण है, कविता का "शीर्षक" "एक रण वैचारिकी है शेष" कवि के अभिप्रेत को स्पष्ट कर देता है, नवें दशक की पौराणिक आख्यानक कविताओं की श्रृंखला में विराट की यह कृति विशेष रूप से विवेच्य और उल्लेखनीय है ।

निर्वसना

महा भारत की मुख्य नारी पात्र द्रौपदी को लेकर हिन्दी में अनेक कविताओं की सृष्टि हुई है, इस श्रृंखला में कवि की "निर्वसना" कविता ही ध्यान आकर्षित करती है, "विराट" की प्रातिभ कथ्यशैली और आन्तरिक उद्वेगों का काव्य प्रकाशन अपने आप में एक विरल घटना है, परम्परित कथा वस्तु में अपने अभीष्ट कथ्य को प्रासंगिकता के साथ काव्यांकित करना विराट की अपनी पहचान है, "निर्वसना" में यह तथ्य अनेक स्थानों पर देखा जा सकता है :-

नारी शोषण और नारी व्यथा की आन्तरिक छटपटाहट का यहाँ बड़ा ही सार्थक प्रयोग किया गया है, नारी हृदय के चीत्कार का यह कथ्य दृष्टव्य है :-

" हवा के ये झंकोरे / आँधियाँ / झंझा /
लटकती डालियाँ / काँटे / गले के हार / बाँहें /
नागफनियाँ / वासुजी बंधन / सभी मिल खींचते हैं / वस्त्र /
इस निखसन - तन से / सभी / इस देह - मृग को / बींध डालेंगे/
नयन - शर से / चबाने को / सभी उद्यत खड़े / इन मांस पिंडों को/
कपोलों को / अधर को / नयन को / इस कान की लव को /
चिबुक / ग्रीवा तथा भुजमल को / इस वक्ष को / कवि को /
उदर को / संधि जंघा को / नितम्बों से चरण तक / देह का जंगल/
चबाने को / सभी उद्धत / सभी आतुर / सभी सन्नद्ध है,
वनचर ।" (1)

नारी हृदय का चीत्कार इन शब्दों में व्यक्त होता है :-

" सूझते / अंधे / सभी बहरे हुए - से / बस /
निगलते जा रहे हैं / ग्रास तन का / त्रास बोते जा रहे -
अन्तस् - अवनि में / आह / युग इतना / कभी बर्बर नहीं था । (2)

नारी नियति के संत्रास को उजागर करती हुई द्रोपदी का यह चीत्कार भी ध्यातव्य है ।

---

1. निर्वसना - डॉ० विष्णु विराट
2. - वही -

" वहाँ जो वीर / उठकर बेधता था मत्स्य / तब लगता / कि जैसे -
बाण उसका / सन - सनाता - सा / इधर आया / कि जैसे साँप-सा
फुत्कार मारता - सा / उधर आया / कि अब ये बाण / मेरे वक्ष में /
धंस जाएगा / पल में / कभी कटि / पीठ में / या शीश में / चुभ -
जायगा / सीधा / कभी लगता / कि जैसे मत्स्य मैं हूँ /
इस स्वयंवर में / सभी के दृष्टि शर / इस देह पर / बस छूटने को है।" §1§

कुन्ती के आदेश पर जब द्रौपदी पंचपतियों में विभाजित होती है, तो उसका नारीत्व क्रन्दन करने लगता है :-

" कि जैसे मैं नहीं थी नारि / मैं बस भोज्य थी सबको /
कि बस एक वस्तु थी / उपभोग्य समिधा-सी / हवन होती /
कि जैसे / अश्व थी / कोई खरीदे / बेच दे कोई / चढ़े कोई /
कहीं भी बाँध दे / कुछ भी करे उसका / हहा ..... /
मैं पत्नी की / पावन परिधि से / सर्वचारी बन / कहाँ ?
किस की हुई ? मैं नारि / मेरा कौन नर - पुंगव ??? §2§

यौद्धिक विभीषिकाओं में संलग्न वीर सिपाहियों की नियति को काव्यांकित करता हुआ कवि कहता है :-

" कभी भी वे / घरों की महकती ड्योढ़ी न छू पाए /
कभी भी वे / गृहस्थों - से / न सुख से सो सके पल भर /
भुजाओं में सदा आयुद्ध / हृदय में ज्वाल थी रण की /
सिराओं में सदा / प्रतिघात के / बादल उमड़ते थे /
नयन में क्रोध की जलती अग्नि / तन-मन जलाए थी /
कभी भी वे / पिता बनकर / न शिशुओं से मिले हँसकर /
कभी भी पति बने वह / सुख न पाये / चैन से सोये /
सदा ही एक - सी / रण - जिंदगी / जीकर मरे वे सब ।" §3§

"निर्वसना" समग्र रूप से नारी संत्रास की एक विरल प्रस्तुति बन कर उभरी है, नारी मनोव्यथा का बड़ा ही जीवन्त व साभिप्राय प्रयोग किया गया है ।

<u>तमसा के तट</u> :- वाल्मीकि आश्रम तमसा नदी के किनारे बसा था, यहीं पर वनोवास के दंड से अपराधिक सीता आश्रय ग्रहण किये हुए थी, यहीं पर लव-कुश का जन्म हुआ था ।

समग्र कविता में विराट ने सीता द्वारा समाज को आक्षेपित किया है, समाज के रूढ़ गठन को तोड़ने की हिमायत की है, सीता के ही स्वरों में :-

1. निर्वसना - डॉ0 विष्णु विराट
2. - वही - §3§ - वहीं -

" मैं बहुत अकेली रही / प्रतीक्षा में अनंकल / पर आप नहीं आए /
सत्ता व्यामोह त्याग / तुम नारि नहीं हो / इसीलिए समझोगे कब ?
नर रहित नारियों की अनन्त पीड़ाओं को / हे लोक नाथ /
आक्षेप लादता एक पुरुष / बन गया आपकी राजनीति का संविधान /
इस निहित - स्वार्थ में / यह अबला / बलिदान - दान हुई । " (1)

"तमसा के तट" पर कवि स्थूल चित्रों की संयोजना में तथा आक्षेप - प्रत्याक्षेपों में ही अधिक व्यस्त रहा है, अपने अभिप्रेत कथ्य को वह अधिक समर्थता से व्यक्त संभवतः नहीं कर पाया है ।

पितृऋण :

लघु प्रबंधात्मक इस छान्दस कविता में कवि ने " महा भारत " के एक विशिष्ट वृद्ध पात्र भीष्म पितामह के आत्म मंथन को व्यक्त करने का यत्न किया है, अन्य कविताओं की भाँति "पितृऋण" की भी "भीष्म पितामह" की दमित कांक्षाओं का असंतोष ही है, जिसमें यह टूटा और हारा हुआ व्यक्ति अपने सम्पूर्ण दलित और कुंठित अतीत की विस्मृत्तियों के ऊहापोह को जी रहा है - यथा :-

" वह जीत - जीतकर हार गया हर बार युद्ध,
वह युद्ध - युद्ध हो उठा स्वयं आवाद शिरा,
वह सांस - सांस संघर्ष कर रहा तुभर वीर,
अब डूब रहा है दिनकर - सा धीरे - धीरे । " (2)

यौन कुंठाओं के प्रति कवि एक बुद्ध व्यक्ति की क्षीण कांक्षाओं को रेखांकित करता हुआ कहता है :-

" ढलती काया की क्षीण वासनाओं के ज्वर,
कितना - कितना निर्बल कर देती है, मनको,
कितना - कितना दुख देती उचित वर्जनाएँ
नर कितना विचलित हो जाता है, इस क्षण में ।" (3)

अपने अतीत के निर्णयों के प्रति भीष्म के मन में वितृष्णा है, वह कह उठता है :-

" आजीवन ब्रह्मचर्य की मैंनें सपथ गही
कैसा मैंनें कर डाला ऍ अविवेकी - मन ।" (4)

---

1. पितृऋण - डॉ० विष्णु विराट चतुर्वेदी
2. - वही -
3. - वही -
4. - वही -

अपनी दमित कांक्षाओं के प्रति उसे घोर असंतोष है, वह कहता है :-

" वारुणी पिये मेरी दूमत कांक्षाओं ने / कैसे - कैसे दुर्लंध्य ज्वार - उपजाए थे / मैं कैसे - कैसे सिन्धु तैरता रहा सदा / फिर भी रेतीला मन प्यासा का प्यासा है । " ‖1‖

अन्त में भीष्म संतानोंत्पत्ति के अभाव में अपने पितरों के ऋण को चुकाने के लिए जब व्यग्र हो उठता है, तो अपने प्राणों का उत्सर्ग करके ही पितृऋण चुका पाता है, यथा :-

" मैं आज अकेले ही चिथड़े चिथड़े मन से,
अंजुलि में पावन पीड़ा का पानी लेकर,
अब तुम्हे दे रहा हूँ तर्पण लेटे - लेटे,
आकंठय बाण से बिंधा हुआ मैं देवव्रत । ‖2‖

तथा -

" ए पिता । विकारी मन के तामस प्रजनन से,
दुर्गाह्य पितृऋण भार समर्पित करता हूँ,
लो ग्रहण करो आत्मीय जनों के : शव सहज,
कुरुक्षेत्र भरा पूरा है लुंठित लाशों से ? ‖3‖

अन्त में कवि विष्णु विराट ने भीष्म पितामह के देहत्याग की घटना को बड़ा ही सार्थक बिम्ब प्रदान किया है यथा :-

" कातर पीड़ाओ ने विदग्ध कर दिया हृदय,
आरक्तानन वह भीष्म सूर्य - सा धधक उठा,
हाथों से कसकर पकड़ प्राण के पंछी को,
जा उड़ जा, कहकर छोड़ दिया नीलाम्बर में । " ‖4‖

समग्र कविता मिथक पर आधारित है, किन्तु अपने अनिर्णीय क्षणों का द्वन्द्व, दामित कांक्षाओं के प्रति असंतोष तथा विगत योग्य के प्रति छटपटाहट ने इस कविता को एक नया आयाम प्रदान किया है, कविता छान्दस होते हुए भी तुकान्त नहीं है, फिर भी कवि का छन्द मोह कविता को शिल्प की दृष्टि से रूढ़ बना देता है।

---

1. पितृऋण - डॉ0 विष्णु विराट चतुर्वेदी
2. - वही -
3. - वही -
4. - वही -

समरांगण में :

यह कविता नितांत मौलिक कथा वस्तु पर आधारित है, लेकिन इसके पात्र रूढ़ एवं पौराणिक है, रावण और सूर्य का संवाद ही कविता की मूल कथा वस्तु है, रावण का अहंकार और सूर्य का गाम्भीर्य कविता में एक नई प्रति स्पर्धा और तुलनात्मक शक्ति के औचित्य को काव्यांकित करता है, कवि का कथ्याभिप्राय मात्र यौद्धिक विभीषिका को रोकना और युद्ध का निषेध करना ही है, कवि ने स्पष्ट ही कहा है :-

" है - युद्ध , कुद्ध मनकी ईर्ष्या का प्रतिरोधन,
है युद्ध अमिट कालिख, विनाश, की परिभाषा,
है युद्ध अशुद्ध विकारों का मन पर प्रहार,
है युद्ध स्वार्थ के हेतु नीच नर जिज्ञासा । " ॥1॥

सागर पथ दे : तथा सीता स्वप्न

प्रस्तुत काव्य भी विष्णु विराट की ऐसी कविताएँ है, जो पौराणिक चरित्रों पर आधारित है, ये दोनों कविताएँ रामायण की कथा वस्तु पर रची गई है, "सागर पथ दे" में राम का समुद्र पार करने का अभियान है, और सीता स्वप्न में सीता की अन्तर्वेदना को काव्यांकित किया गया है ।

इस प्रकार विष्णु विराट की मिथक रचनाएँ अधिकांशतः पात्रों की मनो व्यथा को ही व्यक्त करती है, साथ में युगीन परिवेश का स्पर्श उन्हे सार्थक प्रासांगिकता से भी जोड़ देता है ।

18. अन्धा कुणाल - कवि महेन्द्र प्रताप

भारतीय समाज में कुछ मान्यतायें तथा सामाजिक नियम इतने कठिन है, कि उन्हे तोड़ना बहुत मुश्किल है, विशेषकर नारी जाति के लिए तो बहुत ही कठिन है, किन्तु कभी - कभी समाज में इस प्रकार की आवश्यकता की पूर्ति के लिए समाज की मानवघाती मर्यादाओं के समक्ष प्रश्न चिन्ह लगा सकती है, स्फुलिंग में संकलित "अन्धा कुणाल" कविता में कवि महेन्द्र प्रताप" ने प्रणय की इस शाश्वत आवश्यकता के मार्ग के अवरोधों के बीच पिसती तिष्य रक्षिता के प्रति सहानुभूति प्रकट की है, कवि नर-नारी के प्राकृतिक प्रणय को ही महत्त्व देता है ।

---

1. पितृऋण - डॉ0 विष्णु विराट चतुर्वेदी

अनमेल विवाह के कारण तिष्यरक्षिता की प्रणय - आकांक्षाएँ दमित रह गई हैं, जिनकी वृत्ति के लिए वह अपने सौतेले पुत्र कुणाल की ओर आकर्षित होती है, प्रस्तुत कविता में कवि ने नारी की शारीरिक आवश्यकताओं को महत्त्व दिया है, और उन सभी मानव - मूल्यों का विरोध किया है, जो व्यक्ति के प्राकृतिक स्वभाव के विरुद्ध पड़ते हैं, कवि ने तिष्यरक्षिता के अर्न्तर्द्वन्द्व को छुआ तक नहीं मात्र कुणाल के अन्तर्द्वन्द्व के माध्यम से झूठी मान - मर्यादा से मुक्त करके नारी को शाश्वत प्रणय की स्वतंत्रता देने के विचार का अनुमोदन किया है, माँ के इस परम्परा - विपरीत व्यवहार से कुणाल को धक्का लगता है, उनके मन में माँ के प्रति ममत्त्व या सहानुभूति की अपेक्षा घृणा पैदा होती है, एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" और मैं / अविश्वास भरी / निःश्वास भरी / आँखों से /
कुछ भूलता सा / तुम्हें निहारता हूँ / .... दुत्कारता हूँ /
धिक्कारता हूँ / बेबस । / बेचैन । / (1)

पहले तो वह आदर्शों की शान पर परख कर वह तिष्यरक्षिता के व्यवहार को समाज विरोधी मानता है, परन्तु धीरे - धीरे कुणाल का झुकाव सामाजिक मान्यताओं में पिसने वाले शाश्वत प्रणय की ओर आर्कर्षित होता है, तो वह कल्पना करता है, कि सामाजिक मान्यताओं परम्पराओं और आदर्शों से मुक्त होने की प्रक्रिया में तिष्यरक्षिता ने न मालूम कितनी मानसिक पीड़ा को सहन किया होगा, अपने अवृत्त प्रणय को तृप्त करने के लिए न जाने कैसे स्वयं को तैयार किया होगा, एक उदाहरण देखें :-

" मैं सोच नहीं पाता,/ वह घड़ी वह क्षण / कैसा होगा ? जब तुमने पहले पहल / निज मन के एकान्त में / निहारा होगा / मन की लाज उतारी-होगी / पुचकारा होगा / और फिर यूँ ही कभी / धीरे - धीरे / तनका रूप उघाड़ा होगा / मैं सोच नहीं पाता हूँ । (2)

इस काव्य में कुणाल इसी निष्कर्ष पर पहुँचता है, कि आज के नर - नारी का शारीरिक रिश्ता ही शाश्वत तथा प्राकृतिक रिश्ता है, पूँजीवादी समाज ऐसे रिश्तों के रास्ते में बाधा उत्पन्न करते हैं, वे लोगों की इच्छाओं पर अपना अधिकार रखना चाहते हैं, अशोक से तिष्यरक्षिता के अनमेल विवाह का कारण

1. अन्धा कुणाल - कवि महेन्द्र प्रताप - नयी कविता में मिथक - डॉ० राज कुमार पृ० - 172
2. - वही - पृ० - 173

साम्राज्यवादी पूँजीवाद ही तो है, जो विक्रीता तिष्यरक्षिता में अतृप्ति पैदा करके उसे कुणाल के प्रति आकर्षित करता है, इस काव्य में कवि का कहना है, कि सामाजिक पूँजीवादी मर्यादाएँ व्यक्ति से अधिक महत्वपूर्ण नहीं होनी चाहिए, जब इन मर्यादाओं का उल्लंघन होगा, वहीं व्यक्ति की स्वतंत्रता पर आघात होगा, इसके साथ ही कवि ने मूल रूप से धन दौलत को ध्यान में रखकर होने वाले विवाह, तथा आज भी हो रहे अनमेल विवाह जैसी समस्या को इस काव्य के माध्यम से उठाया है ।

19. पाषाणी - शरण बिहारी गोस्वामी

पाषाणी काव्य की रचना का आधार बलदेव वंशी द्वारा रचित अहिल्या की कथा के साथ मिलता जुलता है, दोनों में अहिल्या उद्धार की कथा को युगों से शोषण की प्रतीक नारी को न केवल ब्रह्मा की प्रिय सर्जना और एक खूब सूरत नारी माना है, इसके साथ कवि ने उसे एक संवेदनशील, एवं सहृदय युक्त भी बताया है, गौतम द्वारा उसे हृदय पक्ष की उपेक्षा और इन्द्र के द्वारा परम तृप्ति की प्राप्ति - इन दोनों किनारों के बीच झोले खाती हुई अहिल्या की परिणति एक शिला समान बन गई है, इस कृति में मूल रूप से अहिल्या का यह अन्तर्द्वन्द्व ही " आत्मदान " की ही तरह है, जो एक आधुनिक सन्दर्भ में मानवीय संवेदना को दूर गहराई में ले जानें का उत्तम उदाहरण हैं ।

20. वैश्वानर - मृत्युंजय उपाध्याय

इस कृति में कवि ने मुख्य रूप से युग - युग की विभीषिका एवं भूख को केन्द्र में रख कर "विश्वामित्र" और "चान्डाल" के मिथक का प्रयोग करते हुए मृत्युंजय उपाध्याय ने "वैश्वानर" ने 1980 में इस कृति की रचना की, यह उनकी एक लम्बी कविता है, और कथा की दृष्टि से यह काव्य महाभारत के शान्ति पर्व के "आपद्धर्म " प्रकरण पर आधारित है ।

इस कृति में कवि ने " व्यक्तित्व सम्पन्न ब्रह्मर्षि विश्वामित्र को चान्डाल के सामने कुत्ते का मांस खाने के लिए तर्क - वितर्क करना, दैन्य प्रदर्शन दिखला कर एक स्थितिजन्य क्रूर यथार्थ की ही नहीं, ऐसी स्थिति में प्रत्येक मनुष्य के अमानवीय, क्रूर, प्रतिहिंसक बन जानें की त्रासदी की अभिव्यक्ति भी करता है, यह जैसे अतीत की समृद्धि और वर्तमान की बुभुक्षा के बीच खो जाने वाले मानवीय मार्दव की खोज

करता है, वस्तुत: पेट की त्रासदी सारे सम्बन्धों रिश्तों की वास्तविकता पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है, तब यह कथन कितना संगत प्रतीत होता है, एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" कोई नहीं किसी की माँ, बहन, पत्नी / कोई नहीं किसी का पिता, पुत्र, भाई, / सभी के हाथों / घृणा - ईर्ष्या, द्वेष, संदेह की तलवार / जिसके हाथ जितनी लम्बी तलवार उसकी उतनी ही जयजयकार। (1)

" इस तरह " वैश्वानर " में कवि "विश्वामित्र" और "चान्डाल" के माध्यम से मनुष्य की मौलिक दुर्बलताओं, द्वन्द्वपूर्ण स्थितियों और आत्मग्लानि की पर्तें दर पर्तें खोलता है, कथात्मक पक्ष की शिथिलता के बावजूद अपने भाषिक संस्कार में "वैश्वानर" भूख की पीड़ा और अमानवी वृत्त रेखाओं को उभारती है । (2)

21. <u>युद्ध जारी है</u> - <u>केवल गोस्वामी</u>

यह केवल गोस्वामी की एक लम्बी कविता है, जिसमें कवि ने राम के माध्यम से मृगमरीचिका में फँसे व्यक्ति के द्वन्द्व को अभिव्यक्ती देने का प्रयास किया है, आज का व्यक्ति किस तरह मोह - माया के जाल में फँसा है, और उसकी नियति क्या है, उसे अभिव्यक्ति देने का सफल प्रयास किया है, एक उद्धरण दृष्टव्य है ।

" सूनी निगाह से तक रहा हूँ / एक अर्से से दरवाजे की ओर जहाँ - से निकल रहा था मैं / सुनहरी मृग की तलाश में / मुझे याद नहीं मेरे साथ भाई लक्ष्मण भी था / x x x x कहाँ है, सोने का हिरण / कुछ भी हासिल नहीं हो सका । (3)

इस काव्य में राम के सन्दर्भ में एक खालीपन के एहसास को उठाया गया है, इस कृति में स्वयं राम को भी यह पता नहीं है, कि यह भीड़ किस तरह जा रही है, वह किसी के विश्वास को लेकर सोच रहे हैं, क्या इस भौतिक जीवन का कोई अन्त है ? कवि जीवन के मध्य में खड़ा है, और उसके चारों ओर जीवन सागर लहरा रहा है, जीवन के व्यक्तिगत और सामूहिक, कितने ही ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न उससे सही उत्तर की प्रतिक्षा में है, कवि इस बात का अनुभव कर रहा है, कि आज के युवा वर्ग के पास कोई आस्था और विश्वास का आधार ही नहीं है, और इस

---

1. समकालीन हिन्दी कविता संवाद - डॉ० विनय अश्विनी पाराशर - पृ०- 51
2. - वही - पृ० - 51-52
3. युद्ध जारी है - कवि केवल गोस्वामी

तरह परम्परा से हटकर राम भी कुछ करने के लिए साहस जुटाते हैं, जिसकी वजह से नई - अर्थ व्यवस्था, नई अर्थ सम्भावनाओं की सर्जना हुई है, आज राम अपनी इस खोखलेपन वाली नीति से बाहर आना चाहते हैं, और इसी प्रश्न को आधुनिकता बोध से जुड़ी कवि की दृष्टि सर्वहारा की बिगड़ी दशा के सन्दर्भ को उठाते हुए, इसे वास्तविक उत्थान के लिए अग्रसर दिखाई पड़ते हैं ।

22. <u>एक लड़ाई समानान्तर</u> - <u>कुमार विकल</u>

इस काव्य में " कुमार विकल " ने कृष्ण के मिथक से समकालीन सन्दर्भों में हुई लड़ाई का वर्णन करते हैं, जो हर युद्ध के समान लड़ी जा रही है, और जिसका परिणाम भी पिछली लड़ाईयों जैसा ही है, एक उद्धरण द्रष्टव्य है ।

> " मैं कृष्ण की तरह झूठ नहीं बोलूंगा / कि हर मोर्चे पर मैं लड़ रहा हूँ/ हर सिपाही के साथ मैं मर रहा हूँ / हर घायल का घाव मेरा × × ×
>
> अश्वत्थामा, जो इस बार सत्य के पक्ष में लड़े हैं / और इस समय - चौदह दिन की लड़ाई के बाद जब पांडव विजय पर्व मना रहे हैं तो वह शहर के सबसे बड़े अस्पताल के सामने खड़े हैं / × × × पांडवों ने एक बार फिर / उसे अर्ध - सत्य से मारा । ‖1‖

कुमार विकल के पहले संग्रह " एक छोटी सी लड़ाई " में निजी जीवन की समस्याओं के प्रति क्षणजीवी वैयक्तिक प्रतिक्रिया के स्वर में मानवीय जिन्दगी की कठिनाईयों और उससे मुक्ति पाने के लिए सामाजिक संघर्ष के प्रति अपनी आवाज को बुलंद किया है, अपनी दफ्तरी जिन्दगी में बिना चार्ज-शीट के मुअत्तिल हो जाने वाले, पेट में अल्सर का दर्द लिये और जेब में न्याय की अर्जी की प्रतिलिपियाँ लेकर अपनी कमजोर मुठ्ठियों से नौकरशाही के फौलादी दरवाजे खटखटानें वाले व्यक्तियों से रोजमर्रा सम्पर्क ही उन्हे इस निष्कर्ष पर पहुँचाता है, कि सफेद आतंक से भरी इन इमारतों में जिन्दगी की तमाम सम्भावनायें नन्हे खरगोश की तरह दुबकी पड़ीहैं, एक उदाहरण देखें :-

> " अकेला आदमी जब / एक तंत्र के खिलाफ है / तो अपने सारे हथियारों के बावजूद / एक काले पहाड़ से / निहत्थी लड़ाई ही करता और अन्त में एक दिन / अपने ही लहूलुहान चेहरे से डरता है / इस तरह छोटी -

---

1. समकालीन हिन्दी कविता संवाद - डॉ० विनय पाराशर - पृ० - 53

छोटी अकेली लड़ाइयाँ लड़ते हुए / कितने ही हाथों से /
हथियार छूट जाते हैं / और एक फैसला कुन लड़ाई से पहले ही /
कितने बुलन्द हौसले टूट जाते हैं । " (1)

23. सुअर - उदय प्रकाश

उदय प्रकाश की सुअर पर लिखी छह (6) मिथकीय कवितायें व्यवस्था की राजनैतिक कुरूपता को उभारती है, कविता का औपन्यासिकीकरण जब उसके नाटकीय अथवा लिरिकल आकार से ज्यादा प्रासंगिक हो गया है, इसलिए सुअर की मिथकीय कथा के भीतर से कवि जन - जीवन का आर्थिक - सांस्कृतिक संकट व्यक्त करता है, सुअर एक खुद गंदा जानवर है, वह समूचे परिवेश को गंदा कर देता है, यहाँ तक कि हरण भी उसकी दुनियाँ के सम्पर्क में आकर धीरे - धीरे सुअर में बदल जाता है, मध्य वर्ग की सुविधावादी प्रवृत्ति पर व्यंग्य बहुत साफ है, उदय प्रकाश इस तरह की व्यवस्था से टकराना चाहते हैं, इस लिए अपनी सौन्दर्यबोधी संवेदना के केन्द्र में उस कारीगर को रखते हैं, जो इमारत की सुन्दरता का निर्माता है, पर खुद गाँव में अपनी मनिलंगी खटिया पर पड़ा हुआ कारीगर / खाँस रहा है जोर - जोर से । इंजीनियर को नहीं मालूम की व्यवस्था की इमारत इसी लिए हिल रही है । अपने ऐसे संकेत-कों के लिए कवि ने पूरी व्यवस्था का संकट दिखाया है, उसके पिता तक उसके अंग हैं । बहुत नजदीक तक और भीतर तक वह संकट है, पिता का एक चित्र पहाड़ के " चटियल" मैदान के रूप में सौन्दर्य बोधात्मक है, तो एक दूसरा चित्र मूल्यों के संघर्ष का संकेतक है । आधुनिकतावाद की बाढ़ में टूटे सम्बन्ध को नये वास्तविक धरातल पर अपने से जोड़ते हुए कवि कहता है :-

" पिता / तुम अपने ही दुश्मन के / वफादार सिपाही थे / ...
देखो पिता, देखो / इतिहास के इन लंबे अनुभवों के साथ / अब
दाखिल होते हैं हम / अपने तर्क से हमें आशीष दो / पिता हमारे
साथ आओ / आखिरकार हम आ रहे हैं प्रतिशोध की /
सामूहिक आग में जलते । " (2)

24. मत्स्यावतार - सुरेन्द्र तिवारी

प्रस्तुत काव्य सुरेन्द्र तिवारी के काव्य संकलन " जुझते हुए " संकलित कविता में कवि ने पौराणिक साहित्य में चित्रित "मनु" द्वारा "मत्स्यपालन" की

1. समकालीन हिन्दी कविता - डॉ० यशगुलाटी - पृ० - 176
2. मिथक और आधुनिक कविता - डॉ० शम्भूनाथ चतुर्वेदी - पृ० - 399

प्रक्रिया का सुन्दर साम्य मूलक उपयोग करते हुए कवि ने आज के महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों की पीड़ा का वर्णन किया है, इस पौराणिक कथा का सार इस प्रकार है, कि " मत्स्य " का आकार बड़ी तीव्र गति से बढ़ता रहा, और मनु उसे क्रमशः कमन्डल, बावली, तालाब, झील, नदी, समुद्र आदि में छोड़ता रहा, प्रस्तुत कविता के नायक अधिकारी की महत्त्वाकांक्षा भी बढ़ती जा रही है, इसी लिए पूर्ण नहीं हो पा रही, वह "मत्स्य" रूप में "मनु" से निवेदन करता है, कि उसे और अधिक बड़ा कमन्डल दें, और अधिक ऊँचा बड़ा पद दें, आधुनिक महत्त्वाकांक्षी अधिकारी ने स्वेच्छा से इस पद को ग्रहण नहीं किया, इसी लिए उसे अपने कार्य के प्रति, एक प्रकार का आलस्य है । एक उद्धरण द्रष्टव्य है :-

" एक ऋषि ने दयावश / मुझे अपनी अंजली में शरण दी थी ।
मैंने स्वेच्छा से / यह जिन्दगी वरण नहीं की थी । " (1)

योग्यता के आधार पर चयन न होने के कारण आज का अधिकारी अपने कार्य के प्रति उदासीन हो गया है, बड़े - बड़े वैभव की तलाश में आज के अधिकारी का मन शहर के प्रति ऊब गया है, वह इस ऊब से छुटकारा पाना चाहता है, एक उदाहरण देखें :-

" इस शहर को जी चुका हूँ / मुझे / और बड़ा काम दे /
मुझे ऐसी जगह फेंक / जहाँ दीवारें खड़ी हों / मैं छोटा ही सही /
इस शहर में / अब जी लगता नहीं । " (2)

प्रस्तुत काव्य में साठोत्तरी मिथकों के माध्यम से कवि ने जिस ऊबजन्य स्थिति का वर्णन किया है, आज का व्यक्ति अपना जीवन बहुत ही तीव्रगति से जीने के लिए उत्सुक दिखाई देता है, इसी रफ्तार में वह जीवन के प्रति किसी सार्थक दृष्टिकोण को विकसित करने में असफल रहा है, चयन की स्वतन्त्रता की बात करना वैसे तो हास्यापद है, किन्तु चयन की स्वतंत्रता मिलने पर भी व्यक्ति ऊब जाता है, समाज में रहकर व्यक्ति समाज द्वारा बनाये गये नीति - नियमों का पालन करता है, समाज व्यक्ति के सामने कुछ विकल्प भी प्रस्तुत करता है, जिनमें से उसे एक को चुनना पड़ता है, इस काव्य में वही स्थिति उर्वशी की भी है, और वही स्थिति मत्स्य की भी, किन्तु कवि प्रश्न करता है, कि चयन की स्वतंत्रता से समाज को क्या लाभ हुआ !

---

1. जूझते हुए - सुरेन्द्र तिवारी - पृ० - 66
2. - वही - पृ० - 67

25. <u>निर्वाण नहीं मिलता</u> - <u>कवियित्री पुष्पा</u>

" मुठ्ठियों में बन्द आकार में " संकलित कविता "निर्वाण नहीं मिलता" में कवियित्री पुष्पा ने तृष्णा - हताशा, पीड़ा, निष्प्रयोजन, भटकन, तथा अस्तित्त्व-हीनता के विरूद्ध व्याप्त चिन्ता और संघर्ष के बावजूद मिलने वाली विफलता के कारण निरर्थक हो रहे जीवन के प्रति, चिन्ता व्यक्त की है, इसी तरह की अन्त-र्दाहिनी पीड़ा को सहन करके चिन्तन मनन के बाद "सिद्धार्थ" ने तो निर्वाण प्राप्त कर लिया था, परन्तु ऐसी स्थिति साम्य होते हुए भी आधुनिक मानव को निर्वाण नहीं मिल पा रहा, एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" अखन्ड चिन्तन में - लीन / व्यक्तित्व / अस्तित्व / अस्तित्व के लिए / संघर्षरत / ये सिद्धार्थ / किन्तु निर्वाण नहीं मिलता । ॥1॥

कवियित्री पुष्पा का कहना है, कि आज की युवा पीढ़ी ऐसी अनेक समस्याओं का सामना कर रही है, जिसके कारण उसके जीवन में निराशा ही दिखाई पड़ती है ।

26. <u>एक पौराणिक वेदना</u> - <u>रामदेव आचार्य</u>

प्रस्तुत काव्य में द्रौपदी के आत्मकथ्य के द्वारा विद्रोह, आक्रोश और नारी के "वस्तु" हो जाने का तीखा व्यंग्य किया है, और दूसरी तरफ समर संकल्प की दो कविताओं में अर्जुन और विश्वामित्र के प्रति जो सम्बोधन उन्होंने किया है, इसमें युद्ध की तरफ इशारा किया है, इसी सन्दर्भ में उन्होंने " इतिहास की पुनर्रचना" कविता में कृष्ण और राधा के प्रति जो सम्बोधन है, उसमें रोमांटिक भाव व्यक्त किये हैं, इसके साथ ही इन भावों को लेकर उन्होंने आज हो रहे शोषण और विद्रोह की भावनाओं का भी समावेश किया है, राधा के विवाह को उन्होंने एक व्यापक रूप दिया है, इस कविता की अन्तिम पंक्तियों में उन्होंने इतिहास की क्रान्तिकारी चेतना को भी उठाया है, इन कविताओं की द्वारा ऐसा प्रतीत होता है, कि कवि के पास मिथक चेतना को ग्रहण करने की एक अपार दृष्टि है, जो आज के सन्दर्भ को एक नया मोड़ देती है ।

27. <u>सपने में बाल्मीकि</u> - <u>रमेश चन्द्र शाह</u>

जब हम रमेश चन्द्रशाह की कविताओं की चर्चा करते हैं, तो भाषा का

1. निर्वाण नहीं मिलता - कवियित्री पुष्पा

एक अन्य सपाट पर व्यंजनात्मक रूप देखनें को मिलता है, जो कि मिथकीय पात्रों तथा प्रसंगों को चिन्तनशील धरातल पर खड़ा पाते है, जो आज के सन्दर्भ को उजागर करते हैं, इनके काव्य में चिंतन पर आधारित मनोदशाओं का एक निजी भाषिक संरचना है जो बहुतों से अलग है, किन्तु कवि ने मिथकीय चरित्रों और प्रसंगों को लेकर आज की विडम्बनाओं को उभारने का प्रयास किया है । पंचवटी दंडक, लंका और पंपा भौगोलिक नाम होते हुए भी हमारी प्राचीन सांस्कृतिक चेतना के उसी प्रकार प्रहरी है, जिस प्रकार मिथकीय चरित्र और पात्र क्योंकि मिथिक चेतना में पात्र और स्थान का एकीभूत संस्कार हो जाता है, " सपने में वाल्मीकि " नामक कविता में ये स्थान जातीय मन के अंग होते हुए भी आज निर्वासित से लगते हैं, एक उद्धरण द्रष्टव्य है :-

" लंका, ऋष्यमूक, पंचवटी / पंपा, चित्रकूट, दन्डक वन/
पूछ रहे हैं कब टूटेगा / मेरा यह निरबाधि निर्वासन ।" ﴾1﴿

इस काव्य में वाल्मीकि स्वयं कवि का एक मिथक है, यह एक ऐसे कवि का मिथक है, जो अपने इतिहास भूगोल को मिथकीय संस्कार देकर उन्हे अमर बना देता है, वाल्मीकि आज के कवि को उसकी बिडम्बनाओं की ओर संकेत कर रहे हैं, तथा आज के रंग - ढ़ग को भी देख रहे हैं, एक उदाहरण देखें :-

" होंगे राजा मुनी यती सब / वैसे ही अब भी जैसे तब /
देख चुका हूँ, देख रहा हूँ / काल देवता के सारे ढब।" ﴾2﴿

शाह की कविताओं में प्रसंग वश समुद्र मंथन का विपर्यय मूलक प्रयोग तथा भीष्म पितामह हिरण्य कश्यप आदि चरित्रों द्वारा आज के व्यक्ति की विसंगतिओं को उभारा गया है, मंदराचल पर्वत ﴾समुद्र मंथन﴿ के विपर्यय के द्वारा घिसते एवं संघर्षरत व्यक्ति के "नर्क" को इस प्रकार व्यंजित किया गया है :-

" सुनों / मंदराचल पर्वत केवल / एक कथा थी / मैं तो गले गले -
तक डूबा / पेर रहा हूँ - जनम - जनम से / तुम सब का /
यह नर्क । " ﴾3﴿

भीष्म पितामह आज की कीलित शताब्दी पर लेटे हुए अपनी "प्रेतछायाओं से घिरे हुए " भयावह स्थिति का अनुभव कर रहे हैं, जो आज के युग की "यातना" और

1. आठवें दशक की हिन्दी कविता - डॉ0 विनय - पृ0 - 245
2. - वही - पृ0 - 245
3. - वही - पृ0 - 245

भविष्य पर प्रश्न चिन्ह लगा रहे हैं, शाह की इन पंक्तियों में भाव - बोध और भाषा का सपाट व्यंजनात्मक रूप प्राप्त होता है, जो कवि के मिथकीय - बोध की भावी संभावनाओं को प्रकट करता है । §1§

तनाव और वेकारी के दल - दल में फँसा आज का युवा वर्ग काफी हैरान है, उसे कोई सही मार्गदर्शक नहीं मिल पा रहा है, और उसकी प्रगति में बहुत सी बाधायें भी हैं, आज के इस असंतोष और तनाव के कारण उसका विकास भी एक मिथक बन गया है । प्रत्येक व्यक्ति जीवन की आपादापी में हर दूसरे को पीछे छोड़ देने में लगा है, आज के तनाव और आक्रोश के दल - दल में फँसा युवक आधुनिक अभिमन्यु का प्रतीक बन गया है, जो द्वन्द्व और संघर्ष के व्यूह में फँसा लगातार युद्ध कर रहा है "बलदेव वंशी" ने अपनी "मन्यु" में इस भाव को कितने सहज ढ़ग से उठाया है । एक उदाहरण देखें :-

" मन्यु व्यूह में फंसा / चक्कर खा रहा है / वह निष्कवच हो घर से -
चल दिया था क्रुद्धात्म / प्रतिशोध में जलता / स्वचालित अग्नि पिंड/
कहाँ - कहाँ टकरायेगा । " §2§

28. रसांगना - शीर्षक का नाम राधा मोह - डॉ0 नन्दलाल चतुर्वेदी "निशीथ"

इस कविता को आकाशवाणी रामपुर और आकाशवाणी मथुरा से प्रसारित भी किया गया है, इस काव्य में कवि ने आधुनिक राधा का मोह आज के कृष्ण के प्रति किस प्रकार का है, उसे इस काव्य में उद्धृत किया है, एक उदाहरण देखें :-

"यह कान्हू विरक्ता नहीं / मोहिता हूँ हे कान्ह /
त्यागता नहीं भोगता हूँ मैं / एक ओर दैहिक क्रान्ति प्रीति /
दूसरी ओर भक्ति की रीति / कैसे निभाऊँ प्रिय बता कैसे /
बता दे युक्ति कोई कान्ह / मोह से मैं मुक्ति पाऊँ । " §3§

29. नींद में डूबे योद्धा - कवि अजीत कुमार

साठोत्तरी मिथकीय कवियों ने असंगति के कारण व्यर्थ हो रहे व्यक्ति के मूल्यों की व्यंजना कर्ण के जीवन के माध्यम से की है, "नींद में डूबे योद्धा सुरक्षित हैं " कविता में कवि अजित कुमार ने आज के मूल्यों को वीभत्स तथा मानवघाती

---

1. आठवें दशक की हिन्दी कविता - डॉ0 विनय - पृ0 - 246
2. - वही - पृ0 - 247
3. रसांगना - डॉ0 नंदलाल चतुर्वेदी - पृ0- 3 प्र.सं.-1974 उत्तराखन्ड - प्रकाशन श्री नारायण प्रेस पिथौरागढ़ उत्तर प्रदेश

बताया है, आदर्शवाद की बातें तो कविता के नायक को आकर्षित तो करती हैं, किन्तु वह इस रास्ते पर चलकर यह अनुभव कर चुका है, कि आज के युग में आदर्शवाद एक मिथ्या है, उसे मक्कारी बेईमानी में फायदा दिखाई देता है, वह इसी प्रकार की नींद में डूबा रहना चाहता है, क्योंकि अँधेरे की नींद में वह अपने आपको सुरक्षित होने का अनुभव करता है, वह ऐसा इसलिए करना चाहता है, क्यों कि वह वास्तविकता को पहचान गया है, एक उद्धरण दृष्टव्य है ।

" होएं हम किरणों से भले ही अपरिचित / पर ज्ञात हैं हमें तो /
वे गंदी है नीच और घृणित और कुत्सित हैं । " §1§

आदर्शों की ये कुत्सित किरणें नींद में सोए योद्धा की नींद तोड़ने का दम्भ भरती हैं, परन्तु आधुनिक जीवन - संघर्ष के योद्धा इन आदर्शों से विपरीत - आचरण के लिए प्रतिबद्ध हैं और जागृति के विरूद्ध मोर्चा लगाए बैठे हैं, आदर्श की किरणों को वे दस्यु और धोखे की टट्टी ही समझते हैं, क्योंकि इन्हीं की आड़ लेकर धूर्त व्यक्ति भोले - भाले व्यक्ति को ठग लेता है, एक उदाहरण देखें :-

" तुम्ही तो असत्य - पक्ष, तुम्ही दस्यु अन्यायी ।
धर्म युद्ध को हम धर्म युद्ध नहीं मानते ! " §2§

प्राचीन आदर्शवान कर्ण अब आदर्शहीन हो गये हैं, धूर्त हो गये हैं वे आदर्शों को अपना कर अपनी पुरानी नियति को दुहराना नहीं चाहते, आदर्शों से वे बचे रहना चाहते हैं, एक उद्धरण दृष्टव्य है :-

" हम हैं कूटज्ञ कर्ण, धूर्त कर्ण, चतुर कर्ण / दानी नहीं / और यों -
सुरक्षित हैं उसके उजाले से / संभव है जिससे हम कभी - कभी जन्में हों।" §3§

आदर्श और आचरण में आयी गिरावट के कारण परम्परा से चली आ रही परिपाटी में भी गिरावट आयी है, व्यक्ति - व्यक्तिघाती हो गया है, सत्य, दान, दया, पौरूष और कर्म का अब कोई महत्व नहीं रह गया, क्या मनुष्य इनसे अलग होकर समाज का कल्याण कर सकता है ।

सन् 60 के बाद हिन्दी कविता एक नयी समझ और नये तेवर के साथ प्रस्तुत हुई, जिसकी पृष्ठभूमि में छायावाद की विपुल काव्य सम्पदा, बीज रूप में

1. नींद में डूबे योद्धा - कवि अजित कुमार
2. नयी कविता में मिथक - डॉ० राजकुमार - पृ० - 114
3. - वही - पृ० - 115

उपस्थित थी, कवि के वैचारिक मेधा एक साफ सुथरी काव्य यात्रा से स्वस्थ और सम्पन्न हो चुकी थी, वह कुछ नया और मौलिक प्रस्तुत करने के लिए कटिबद्ध हो चुका था, उसके सामने सामयिक व्यवस्था का असंतुलन दमन के प्रति आक्रोश, भ्रष्टाचार, और प्रदूषित सामाजिक परिवेश मुंह फाड़े खड़ा था, साठोत्तरी कवियों ने अब तक-अनेक प्रयोग पढ़े और सुनें थे, उन्हें लगा भारतीय पुरावाग्ंमय निहित पौराणिक सन्दर्भों को आधुनिक जीवन मूल्यों में समानांतरित रूप से स्पर्श किया जा सकता है, और मिथक के माध्यम से अपने कथ्य को काव्य – चातुरी और कला सौन्दर्य के साथ बड़े ही सार्थक रूपों में व्यंजित किया जा सकता है ।

कविता के मिथक प्रयोग में भारतीय मनीषा को दो रूपों में उपकृत कराया, प्रथम तो सामान्य पाठक भारतीय वाग्ंमय के विस्मृत पौराणिक सन्दर्भों को समझ सका, और दूसरे वह कविता की इस नयी भंगिमा से परिचित हो सका ।

जहाँ तक हिन्दी कविता में मिथक के प्रयोग का प्रश्न है, अधिकांश कवियों ने पौराणिक कथाओं या पात्रों का नवीकृत रूप सामने रख कर उसे नये सन्दर्भों में व्याख्याति करने का प्रयास किया है, इसमें भी जहाँ कथाओं को नये संदर्भित वातावरण से जोड़ा गया है, वहाँ पुरा पात्रों के माध्यम से पाठक के मानसिक धरातल को भी आन्दोलित किया गया है ।

पौराणिक पात्रों की चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर सामयिक विवेचय, व्यक्तियों पर व्यंग्य, कटाक्ष, उपहास व आलोचनायें प्रस्तुत की गई हैं, तो दूसरी ओर प्रकान्तर से उनकी प्रस्तुतियाँ और प्रसंशाएँ भी व्यक्त की गई है।

अधिकांश मिथकीय चरित्रों के मानसिक द्वन्द्वों को काव्यांकित करते हुए साठोत्तरी कवियों ने आज के आम आदमी की या किसी विशिष्ट आदमी की उहापोह और उसकी मानसिक चेतना को अनेक रूपों में स्पर्श किया है, हिन्दी कविता में मिथक का प्रारम्भ बहुत पहले से होता रहा है, खड़ी बोली के प्राथमिक उन्नयन के साथ – साथ इस प्रकार के प्रयोग होते रहे जिनका उत्कर्ष "मैथिली शरण गुप्त" "शियाराम शरण गुप्त" भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द्र, आदि की कृतियों में देखा जा सकता है ।

छायावाद में प्रबन्धात्मक कविताओं का अभाव रहा, इसलिए किसी पौराणिक कथा पर आधारित प्रबन्ध काव्य का दर्शन नहीं होता, हाँ इस सन्दर्भ में कुछ लम्बी कवितायें अवश्य हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं, जिनमें "निराला की

" राम की शक्ति पूजा " प्रमुख है, " जय शंकर प्रसाद " की "कामायनी" भक्ति और अध्यात्म की गहन वैचारिकी से इतनी सराबोर रही, कि उसका सामयिक सन्दर्भ आम - आदमी तक नहीं पहुँच पाया, और उसका मिथकीय प्रचलित रूप भी स्पष्ट नहीं हो पाया "दिनकर" की "उर्वशी" या "कुरूक्षेत्र" सतही कक्षों से सलंग्न रहते हुए भी अपने कथाभिप्राय स्पष्ट करने में कहीं-कहीं सफल हो पाये हैं। "दिनकर" ने "रश्मिरथी" में महा भारत के पात्र कर्ण की संघर्षशील मानसिक दशा का अच्छा प्रयोग किया है, और उसमें आधुनिक सन्दर्भों को भी सार्थक रूप से स्पष्ट किया है, किन्तु "उर्वशी" में उसका समस्त कथ्य मूल कथा सूत्र के प्रबन्ध प्रवाह में ही अग्रसर होता रहा ।

धर्मवीर भारती के अन्धायुग ने हिन्दी कविता में मिथकीय प्रयोग की सार्थकता को साधिकार स्थापित किया है, उन्होंने धृतराष्ट्र को एक साभिप्राय प्रतीक मानकर सामयिक व्यवस्था के प्रति अपने आक्रोश को व्यक्त करते हुए उसकी कमजोरियों को काव्यांकित किया है।

नरेश मेहता ने "संशय की एक रात" और "महाप्रस्थान" में कहीं अधिक चातुरी से नये सन्दर्भों को काव्यांकित किया है, "नरेश मेहता" ने मिथकीय कविताओं में काव्य के सौन्दर्यवादी अभिगम अपेक्षाकृत कहीं अधिक सुरक्षित रखा है, जब कि "डॉ0 जगदीश गुप्त" की "शम्बूक" रचना, अभिधापरक नितान्त सतही कक्षों को व्यक्त कर पायी है ।

साठोत्तरी कवियों ने भिन्न - भिन्न मानसिक धरातलों पर पात्रों की सन्निध रचनायें कर पुराचरित्रों को नये परिवेश में स्थापित करने का प्रयास किया है, जिससे "सातवें" आठवें" और "नवें" दशक" की कविताओं में एक वजनदारी और एक स्पष्ट वैचारिकी को प्रोत्साहन मिला है, जिन कविताओं को पिछले पृष्ठों पर विवेचित किया जा चुका है, उन अधिकांश कविताओं में मिथक के मूल स्वरूप की रक्षा करते हुए अपनी - अपनी काव्य क्षमताओं के साथ जिन वैविध्यपूर्ण रूपों में व्यंजित किया गया है, वे कविता की एक प्रभावक भूमिका निर्माण करने में सर्वथा सक्षम हुई है।

अन्त में कहा जा सकता है, कि मिथक का प्रयोग कविता में नया नहीं हैं, किन्तु साठोत्तरी कविता में मिथक की संलग्नता अभिव्यंजना और काव्य सौन्दर्य दोनों को ही सार्थकता प्रदान करने वाली हुई है । आठवें और नवें दशक के कुछ नये

प्रतिभाशाली हस्ताक्षरों ने बहुत ही सुन्दर और प्रभावशाली मिथकीय कविताओं का सृजन किया है, जो हिन्दी कविता की परिवर्तित धारा को एक सौद्देश्य प्रवाह देनें में सक्षम बन सकेगें ।

विवेच्य काल के प्रमुख हस्ताक्षरों में निम्नांकित कवियों की रचनायें इस संदर्भ में ग्राह्य हुई है ।

धर्मवीर भारती का "अन्धा युग" /"कनुप्रिया"/ नरेश मेहता का "संशय की एक रात"/ "महाप्रस्थान" / कुँवर नारायण का "आत्मजयी" / "एक कन्ठ विषपायी" का कवि दुष्यन्त कुमार / जगदीश चतुर्वेदी का "सूर्य पुत्र" / जगदीश गुप्त का " शम्बूक " / बलदेव वंशी का "आत्मदान" / कवि भारत भूषण अग्रवाल का - " सांस्कृतिक चूहे की कतरन " / वीरेन्द्र कुमार जैन का "जब अस्मिता ने अपनी हत्या कर दी थी " / कवि प्रभाकर माचवे का "नमो बुद्धाय" / कवि हरिवंश राय बच्चन का "बुद्ध और नाचघर" / डॉ0 देवराज का "उर्वशी ने कहा" / डॉ0 विनय का " एक पुरूष और " / कवि शैलेश जैदी "का " सूरज एक सलीब " / जगमोहन चोपड़ा का " चक्र व्यूह " / कवि विश्वम्भर नाथ उपाध्याय का " कबंध " / डॉ0 विष्णु विराट चतुर्वेदी की " एक रण वैचारिणी है शेष" / निर्वसना" / "तमसा के तट "/ "समरांगण में" / "सागर पथ दे" / सीता स्वप्न / कवि महेन्द्र प्रताप का " अन्धा कुणाल " / कवि शरण बिहारी गोस्वामी का " पाषाणी" / कवि मृत्युंजय उपाध्याय का "वैश्वानर" / कवि केवल गोस्वामी का " युद्ध जारी है " / कवि कुमार विकल का " एक लड़ाई समानान्तर " / कवि उदय प्रकाश का " सुअर " / कवि सुरेन्द्र तिवारी का "मत्स्यावतार" / कवयित्री पुष्पा की " निर्वाण नहीं मिलता" / कवि रामदेव आचार्य का "एक पौराणिक वेदना / कवि रमेश चन्द्र शाह का "सपने में वाल्मीकि " कवि अजीत कुमार का " नींद में डूबे योद्धा" / जैसी रचनाओं के माध्यम से इन कवियों में अलग - अलग समस्याओं का समाधान मिथकीय रचनाओं के द्वारा किया है ।

परिमाण और परिणाम दोनों ही दृष्टि से पौराणिक आख्यानों पर आधारित काव्य कथा हिन्दी कविता को एक समृद्ध वैचारिकी प्रदान करने वाले सिद्ध हुए हैं । इस प्रकार के कायांकित बिम्ब अपेक्षाकृत अधिक स्थायी, वैचारिक और ग्राह्य बन पड़े हैं ।

जैसा कि कहा जा चुका है, इस प्रकार के काव्यांकन भारतीय मनीषा की अपनी निजी पूंजी होने के कारण अधिक आत्मीय और अपनत्व भरी पहिचान के साथ उद्भूत हुए हैं । यह एक विशिष्ट तथा समृद्ध अविधारा रही है, जिसमें प्रबुद्ध हस्ताक्षरों की साभिप्रायी कविताएँ अपने पूर्ण आलोक के साथ देदीत्य हुई है।

विचार का बदलाव, शिल्प का शौष्ठव, कथ्य का अपनत्व, विधा का आकर्षण, शब्दसंयोजना का वैशिष्टय, सामयिक चेतना का आग्रह, कला के प्रति रुझान तथा प्रस्तुति की मनोरमता आदि अनेक ऐसे तथ्य हैं जो साठोत्तरी कविता की पौराणिक आख्यानक सन्निहिति को सार्थक और सफल बनाती हैं ।

साठोत्तर मिथक कविता के प्रमुख हस्ताक्षरों ने अपने सृजन के भारत का सांस्कृतिक अतीत काव्यांकित किया है उसे नये आयाम प्रदान किए हैं, नई सज्जा से उसे आभूषित किया है और अपनी वैचारिक प्रस्तुति से उसे संवारा है ।

इस काव्य - रूप का सर्वाधिक आकर्षण उसके वैचारिक उन्मेश का है, जिस गाम्भीर्य और अर्थवत्ता के साथ यह पौराणिक संदर्भ आधुनिक कविताओं के संलग्न हुआ है, उसने हिन्दी काव्य - क्षितिज को नए इन्द्रधनुषी उल्लास प्रदान किए हैं। इन पौराणिक पात्रों ने हमारे मनो विज्ञान को उभारा है, व्यक्ति के अन्तर्द्वन्द्वों को झकझोरा है । उसकी मानसिक व्यथाओं को तथा दमित कुंठाओं को बड़े ही मारक तेवरों के साथ प्रस्तुत किया है । समग्र काव्य-धारा में कवि का मानस चिंतन मुखर रहा है और यही कारण है कि साठोत्तरी मिथक कविताएँ वैचारिक स्तर पर अधिक मननीय एवं वरणीय सिद्ध हुई है ।

हमारी पौराणिक कथा - विरासत हमारी अपनी पुराथाती है, इसमें इस राष्ट्र की सांस्कृतिक पहिचान है, विगत भोग्य की सम्पूर्ण मानसिकता है, सम्पूर्ण परिवेश का द्वन्द्व है, इसी धरातल पर इन घटनाओं की सामयिक सन्निहिति इन्हें और भी अधिक सार्थकताएँ और साभिप्रायी प्रस्तुतियों की गरिमा से अभिमंडित करती है ।

साठोत्तरी मिथक कविता से संदर्भित सर्जकों की सम्पूर्ण सृजन मानसिकता को विस्तार के साथ अन्यत्र व्याख्यायित किया जायेगा । यहाँ इतना सब कुछ ही पर्याप्त है ।